वर्ष–3, अंक–4
इंटरनेट संस्करण : 79

पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
जून 2013

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

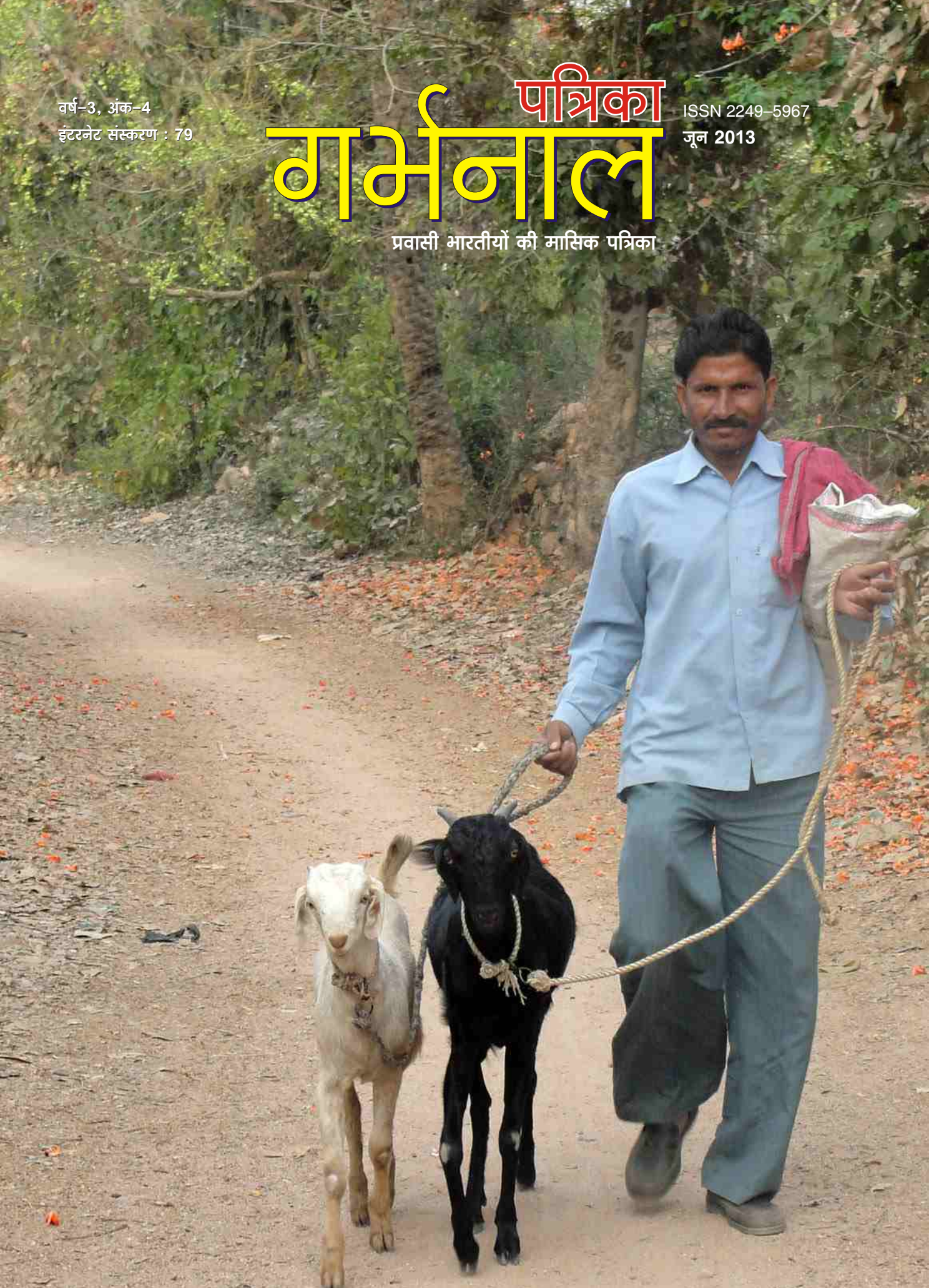

गर्भनाल

एक क्लिक पर पूरे अंक एक साथ

www.garbhanal.com

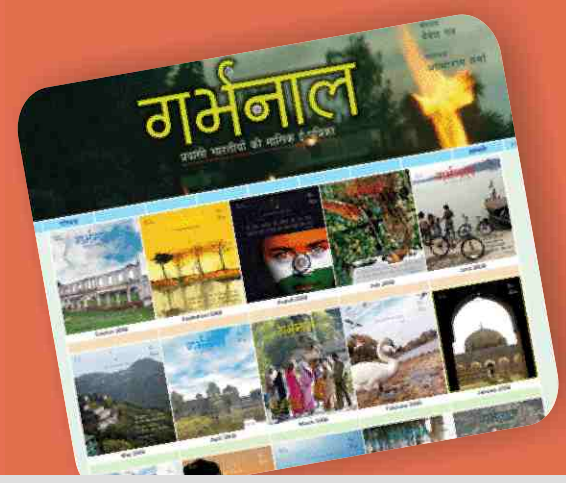

गर्भनाल के पुराने अंक पाएँ

एक साथ एक ही जगह

लॉगऑन करें

www.garbhanal.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

garbhanal@ymail.com

अपनी बात

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है। नैमिषारण्य ८८००० ऋषियों की तपःस्थली रही है। इसके किसी गुप्त स्थल में आज भी ऋषियों का स्वाध्यायानुष्ठान चलता है। लोमहर्षण के पुत्र सौति उग्रश्रवा ने यहीं ऋषियों को पौराणिक कथाएँ सुनायी थीं।

सोमवती अमावस्या की पुण्य तिथि को ऋषि पत्नियाँ नदी में स्नान करने जा रही थीं। वे सन्तानसंभवा थीं। एकाएक उनके गर्भस्थ भ्रूण मातृगर्भ में अस्वस्तिकर महसूस करने लगे। वे सब के सब बाहर निकल आए। वे परेशान थे। मातृगर्भ की सुरक्षा एवम् पोषण से वे असमय क्यों वञ्चित हुए। किसके पाप, और अनाचार का परिणाम था यह। चूँकि गर्भस्थ भ्रूणों का अपना कोई कर्मफल नहीं हो सकता था, इसलिए यह किसी पूर्वपुरुष का ही कर्मफल हो सकता था। उन्होंने अपनी अस्वस्तिकर स्थिति के लिए जिम्मेदार स्थिति पर विमर्श करने के लिए विचार सभा तत्क्षणात् आयोजित की। इस विचार सभा में बारी-बारी से पूर्वपुरुषों में से राजा, मंत्री, शासक, नगर रक्षी, राजनेता, वणिक, उद्योगपति, शिक्षक, कलाकार, लेखक और पिता की आत्माओं को आहूत किया गया और उनसे प्रश्न पूछे गए। क्या उन्होंने अपने-अपने काम निष्ठापूर्वक सम्पादित किए थे? क्या उन्हें न्याय, नैतिकता, समाज, एवम् सामाजिक दायित्व का सम्यक् विवेक था? क्या उन्होंने अपने निजी एवम् निहित स्वार्थों से निरपेक्षता रखी थी? पूर्वपुरुष इन प्रश्नों की धार से क्षत-विक्षत होते रहे। शायद उन्हें अपने कर्मफल के प्रति जवाबदेही का कोई आभास नहीं था। उन्होंने पीने के लिए पानी की गुहार की तो उन्हें रक्त दिया गया कि तुम्हारे कर्मफल के कारण हम अपने मातृगर्भ के पोषण एवम् सुरक्षा से वञ्चित कर दिए गए हैं, इसलिए हम तुम्हारा तर्पण रक्त से ही करेंगे। तुम्हारी प्यास पानी नहीं, रक्त से ही बुझेगी। वे छटपटाते रहे, पर उनके वंशज तनिक भी द्रवित नहीं हुए।

आज के हालात में यह कथा प्रासंगिक है। पिछले दिनों स्पष्ट संकेत मिलते रहे हैं कि कहीं हम भी अपनी परवर्ती पीढ़ी के द्वारा कटघरे में खड़े किए जाएँ तथा अस्वस्तिकर सवालों की बौछार से हमारा सामना हो। इन दिनों संवाद माध्यमों से मिलने वाली सूचनाएँ संकेत देती हैं कि हमने इस सुन्दर धरती को काफी विकृत कर दिया है। सामाजिक एवम् पारिवारिक आचार संहिता तार-तार हो रही है। अपनी बालिका सन्तान की जघन्य हत्या के आरोप में माता-पिता न्यायालय के कटघरे में हैं। प्रशासकों के लिए येन-केन-प्रकारण अपने व्यक्तिगत हितों की उन्नति करना प्राथमिकता है, उद्योगपतियों-वणिकों के फोकस में बस अपना लाभ है। न्याय, नैतिकता, परिवार एवम् सामाजिक दायित्व — की परिभाषाओं को तोड़-मरोड़कर हम पूरी पीढ़ी को हाँके जा रहे हैं। वरिष्ठ मंत्रियों एवम् अत्यन्त उच्च पदाधिकारियों के परिवारों के तिगड़मों के किस्से, फिर क्रिकेट के प्रतिष्ठित खिलाड़ियों का मैच फिक्सिंग के आरोप में गिरफ्तार होना और बंगाल में शारदा चिट फंड का घोटाला — अन्तहीन सिलसिला हो गया है। पंजाब-हरियाणा हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश ने हाईकोर्ट में अपने पुत्र द्वारा परेशान किए जाने की गुहार लगाई है। फिर भी यह व्यवस्था कायम है, क्योंकि इन सारी विकृतियों को व्यवस्था के प्रतिष्ठित एवम् समर्थ लोगों के आश्रय और प्रश्रय का आश्वासन रहा करता है।

सामान्यतः व्यवस्थाएँ मूल्यबोध एवम् विवेक की पहरेदारी से संचालित होती रही है, लेकिन हमने विवेक की आउटसोर्सिंग सीसीटीवी कैमरों को कर विवेक के दंश से अपने आपको मुक्त कर लिया है। हम इन विकृतियों का प्रतिवाद करते रहते हैं, प्रतिकार करने और अपराधों पर नियन्त्रण करने के लिए अधिक सख्त कानून बनाते और लागू करते जा रहे हैं। फिर भी ये विकृतियाँ थमने के बजाए बढ़ती ही जा रही हैं। हम बीच-बीच में प्रतिवाद समारोहों के आयोजन करते रहते हैं, यह हमें अपराध-बोध से मुक्त रखता है। अपने अन्दर झाँकने से हमें बचाता है। ये प्रतिवाद अन्ततः व्यवस्था को लचीलेपन से सज्जित कर उसे अपने को बरकरार रखने में समर्थ बनाते हैं। हम दुनिया को बदलने का आभास देने वाले सैद्धान्तिक बदलावों से उत्साहित नहीं हुआ करते। हमारे लिए आपको दुःख होगा। हमें नए क्षितिज उद्घाटित करने का, अजाने को जानने का जुनून नहीं होता। सम्पत्ति में वृद्धि से उपलब्ध होने वाले अवकाश और सुरक्षा हमें अनुसंधान और चिन्तन के लिए प्रेरित नहीं करते। हमारे प्रयास निपुण राक्षस, हुनरमंद मनोरोगी, और शिक्षित आइकमैन उत्पन्न करते हैं। हम प्रारम्भ से ही बूढ़े रहा करते हैं, अधिक भौतिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए परिपक्व ढंग से अपने विकल्पों को तौलते हुए वे उन पर बारी-बारी से सोचते हैं। हम एक ही चीज को, और अधिक की कामना करते हैं — और पैसे, और उपभोक्ता सामग्रियाँ, जीवन की अच्छी चीजें, जैसा कि हम जानते हैं। हम अपने जीवन में गुणात्मक परिवर्तन की आकांक्षा नहीं रखते, हमें अपने जीवन के तौर तरीकों में मात्र परिमाणात्मक बढ़ोत्तरी की अभिलाषा रहती है। हमने मूल्य-बोध की जगह मूल्यांकन का वरण किया है।

रूसी कथाकार दोस्तोव्यस्की के उपन्यास 'द ब्रदर्स कैमैज़ोव' के मित्या का स्मरण होता है। वह उन लोगों में से एक है, जो करोड़ों-अरबों नहीं चाहते। वह अपने प्रश्नों के उत्तर चाहता है। बहुत देर हो जाने के पहले वह जानना चाहता है कि छोटी चीजें छोटी क्यों होती हैं और बड़ी चीजें बड़ी। वह चीजों को अभी उस रूप में देखना चाहता है जैसे वे शाश्वतता के आलोक में हमेशा दिखेंगी...। वह अवश्यम्भावी के समक्ष हँसना सीखना चाहता है, मृत्यु तक के मँड़राते रहने के समय मुस्कुराते रहना चाहता है। वह सम्पूर्ण होना चाहता है, अपनी चाहतों की समालोचना एवम् उनके बीच तालमेल स्थापित करते हुए अपनी ऊर्जा का समन्वय करना चाहता है।

आज मित्या उन प्रजातियों की सूची में समा गया है जो विकास के क्रम में लुप्त हो गए, जीवाश्म ही उनके कभी और कहीं रहे होने की गवाही दे सकते हैं।

अन्त में युवा कवि सुकान्त भट्टाचार्य की एक कविता की चर्चा मौजू है जिसमें वे नवजात शिशु की बन्द मुट्ठी और क्रन्दन को उसकी इस धरती पर अपने अधिकार की घोषणा बताते हैं। कवि पुरानी पीढ़ी की ओर से नवजातक के अधिकार को स्वीकृति देते हुए उसे आश्वस्त करता है कि वह इस धरती पर से जंजाल हटाकर, इसे उसके वास करने योग्य बनाने के बाद नवजातक के हवाले कर इतिहास हो जाएगा।

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-3, अंक-4 (इंटरनेट संस्करण : 79)

जून 2013

सम्पादकीय सलाहकार

गंगानन्द झा

परामर्श मंडल

वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक

सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग

डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग

डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग

प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार

संजीव जायसवाल

सम्पर्क

डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र

मानस शर्मा

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>>4

भाषा की खादी का सौंदर्य

>>12

प्रवासी भारतीय और हमारे बुज़ुर्ग

>>20

सह-जीवन के बावजूद

>>38

सामञ्जस्य

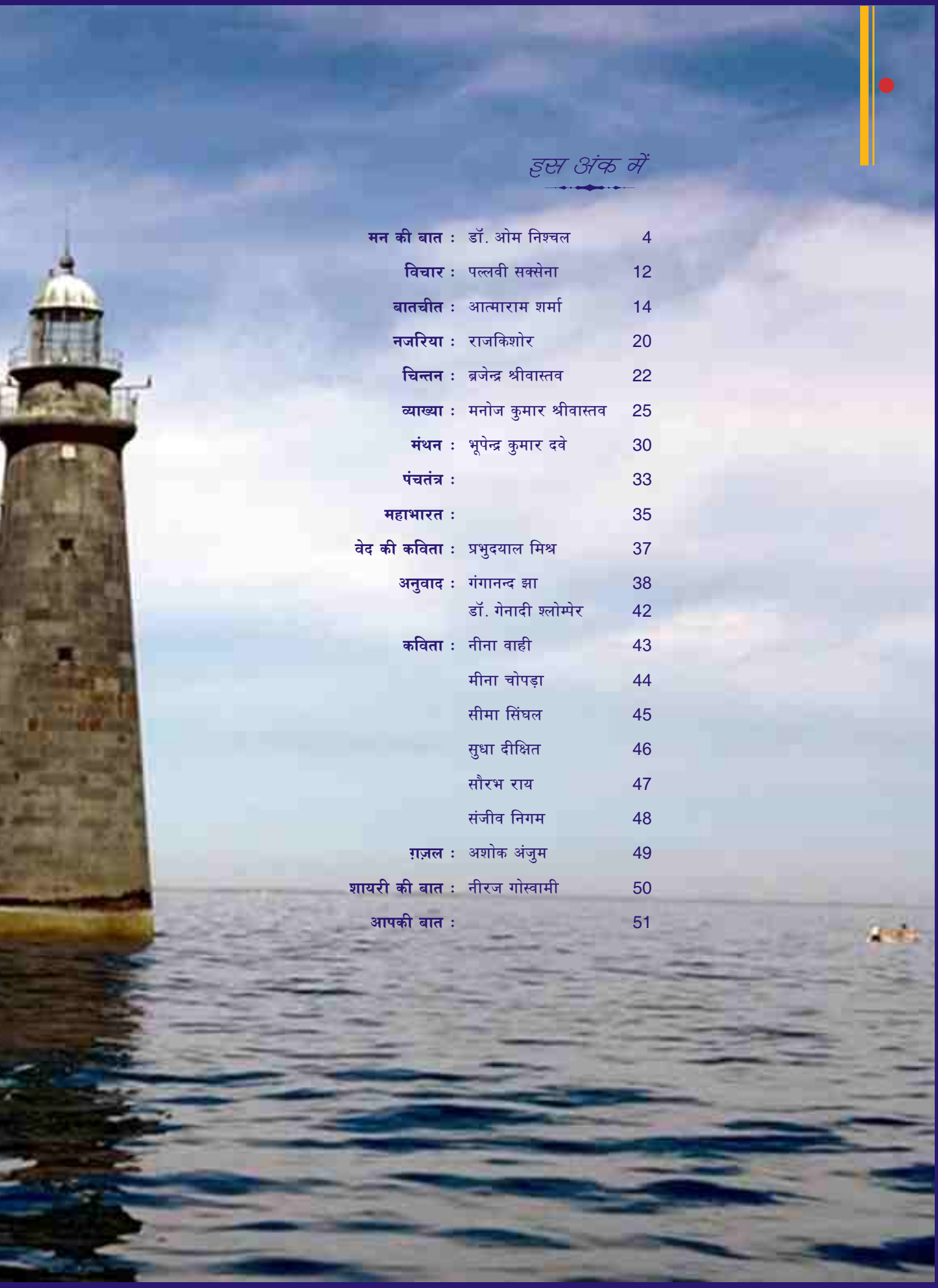

इस अंक में

मन की बात :	डॉ. ओम निश्चल	4
विचार :	पल्लवी सक्सेना	12
बातचीत :	आत्माराम शर्मा	14
नजरिया :	राजकिशोर	20
चिन्तन :	ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव	22
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	25
मंथन :	भूपेन्द्र कुमार दवे	30
पंचतंत्र :		33
महाभारत :		35
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	37
अनुवाद :	गंगानन्द झा	38
	डॉ. गेनादी श्लोम्पेर	42
कविता :	नीना वाही	43
	मीना चोपड़ा	44
	सीमा सिंघल	45
	सुधा दीक्षित	46
	सौरभ राय	47
	संजीव निगम	48
ग़ज़ल :	अशोक अंजुम	49
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	50
आपकी बात :		51

डॉ. ओम निश्चल

१५ दिसंबर १९५८ को ग्राम-हर्षपुर, जिला-प्रतापगढ़, उत्तरप्रदेश में जन्म। हिंदी एवं संस्कृत में एम.ए., पीएच-डी, पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। प्रकाशित कृतियाँ : कविता संग्रह- शब्द सक्रिय हैं, आलोचना- द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी : सृजन और मूल्यांकन, साठोत्तरी हिंदी कविता में विचारतत्व, कविता का स्थापत्य, भाषा में बह आई फूलमालाएँ: युवा कविता के कुछ रूपाकार। संपादन- द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी रचनावली (तीन खंडों में), अधुनांतिक बांग्ला कविता (समीर रायचौधुरी के साथ), तत्सम शब्दकोश, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : साहित्य का स्वाधीन विवेक, जियो उस प्यार में जो मैंने तुम्हें दिया है : अज्ञेय की प्रेम कविताएँ। हिन्दी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत। सम्प्रति - इलाहाबाद बैंक, वाराणसी मंडल में वरिष्ठ प्रबंधक राजभाषा। संपर्क : omnishchal@gmail.com

मन की बात

भाषा की खादी का सौंदर्य

आकाशवाणी ने इधर भाषा की खादी के सौंदर्य को उजागर करने की मुहिम चलाई है। कहना न होगा कि जो सौंदर्य वस्त्रों में खादी का है वही सौंदर्य भाषा में हिंदी का है—वह हिंदी जो पूरे देश में बोली जाती है। उसका लहजा, उसकी शैली कैसी भी हो किन्तु उसकी व्यापकता स्वयंसिद्ध है। खादी का संबंध हमारे देश के स्वतंत्रता आंदोलन से है तो हिंदी का संबंध भी स्वतंत्रता, स्वदेशी और राष्ट्रीय स्वाभिमान से है। किन्तु राजभाषा बनने के बाद हिंदी के स्वरूप में तब्दीली आई है। यह भाषा जो सदियों से हमारे बोलचाल का आधार रही है, उसमें विभिन्न अनुशासनों की पारिभाषिकी ने घुस कर उसे जटिल बना दिया है। फलतः हिंदी बोल सकने वाले लोग भी भद्र महफिलों में हिंदी न जानने की दुहाई देते हुए अंग्रेजी में बोलने को प्राथमिकता देते हैं। लिहाजा हिंदी पर यह तोहमत बार-बार लगाई जाती रही है कि यह राजभाषा के अपने वर्तमान स्वरूप में कठिन है। अकारण नहीं कि हाल में जब राजभाषा विभाग के एक परिपत्र के जरिए हिंदी के कामकाजी स्वरूप को सहज बनाने के उद्देश्य से अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल की जरूरत रेखांकित की गयी तो देश भर के हिंदी बुद्धिजीवियों में विरोध की लहर दौड़ गयी। उनकी नजर में यह हिंदी को हिंग्लिश में बदलने का कुप्रयास था।

> *आज हिंदी का हाल वैसा ही है जैसा आजादी के बाद आजादी के निहितार्थ का। क्या आजादी जिस मकसद से हासिल की गई, उसका लाभ आम जन तक पहुंचा? पहुंचा जरूर, पर उस रूप में नहीं जैसा एक विकासशील समाज में पहुंचना चाहिए।*

हिंदी का हाल वैसा ही है जैसा आजादी के बाद आजादी के निहितार्थ का है। क्या आजादी जिस मकसद से हासिल की गयी, उसका लाभ आम जन तक पहुँचा? पहुंचा जरूर पर उस रूप में नहीं जैसा एक विकासशील समाज में पहुँचना चाहिए। इसी तरह हिंदी भी राजभाषा तो बनी पर क्या यह कामकाजी स्तर पर लोगों को स्वीकार्य हो सकी? क्या यह अमीर खुसरो की मुकरियों की तरह आम जन की जुबान पर चढ़ पाई। क्या यह मीर की शायरी की तरह आम होठों की रूमानियत में बदल सकी? क्या यह तुलसी, सूर, मीरा, रसखान और रहीम के पदों की तरह आम जनता के कंठ में बस पाई? आखिर क्या वजह है कि आज सरकारी कार्यालयों में जो हिंदी चलायी जाती है उसे देख पढ़कर प्रायः लोग घबरा जाते हैं? इसकी बनिस्बत उन्हें अंग्रेजी ही अच्छी लगती है। कुछ वैसे ही, जैसे आज भी गाँव देहात में पुरखे पुरनिया यह कहते हुए मिल जाएँगे कि इस हुकूमत से भली तो अंग्रेजों

> भाषा चलन से व्यवहार में आती है, उससे भागने-बिदकने से नहीं। अखबारों ने निस्संदेह हिंदी को व्यावहारिक रूप देने में मदद की है, लेकिन यहीं खराब हिंदी को भी प्रोत्साहन मिला है। बिहार में 'चार चोर पकड़ाए' जैसी हिंदी चलाने यानी उस स्थान की बोलचाल की हिंदी को बरतने की कोशिश कई अखबारों में दिखाई देती है।

की हुकूमत थी। सवाल यह है कि हिंदी कब आम जन की भाषा बन पाएगी? क्योंकि राजभाषा बनने के बाद तो यह सरकारी कारिंदों के लिए भी कठिन हो गयी। कितने प्रोत्साहनों, धक्कों के बाद भी यह जैसे किसी स्टेशन पर ठहर-सी गयी मालूम पड़ती है। शायद यह सतह पर दीख पड़ने वाली कठिनाई ही इसकी वजह हो। राजभाषा हिंदी के कारोबार से सम्बद्ध होने के कारण ऐसी कठिन हिंदी के लिए अपने ही अनेक पत्रकार मित्रों का कोप भाजन बनना पड़ता है कि हम लोग आखिर कैसी हिंदी सरकारी दफ्तरों में चला रहे हैं।

आकाशवाणी का रिश्ता बोलचाल की हिंदी से रहा है। यह बोले हुए शब्दों की महिमा से जुड़ी है। बोले हुए शब्दों का ही जादू था कि महात्मा गाँधी की आवाज थोड़ी देर में एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाती थी। संतों की आवाज अपनी अनगढ़ हिंदी में पूरे देश में पहुँची। रैदास, कबीर, नानक, तुकाराम की आवाज पूरे देश में गूँजी। मीरा के पदों से भला कौन अपरिचित रह सका। अल्लामा इकबाल तो पाकिस्तान के थे, पर उनका गीत–सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा—हमारे अपने राष्ट्रगीत से भी ज्यादा लोकप्रिय हुआ तो उसकी लोकप्रियता का राज उसका हिंदोस्तानी जबान में लिखा होना भी रहा है। गाँधी जी ने हिंदी के बजाय हिंदुस्तानी का प्रवर्तन किया था। वे जिस भजन को नियमित रूप से गाते थे : वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे, वह भी कहीं न कहीं हिंदुस्तानी के धागे से बुना था। उसकी बुनावट खादी की तरह अनगढ़ किन्तु सरल थी। जैसे सहजता खादी का पर्याय है वैसे ही सरलता हिंदुस्तानी का पर्याय है। कहा गया है : संस्कीरत है कूप जल भाखा बहता नीर। कुएँ का जल भले ही ग्रामीण भारत के पीने का एक अपरिहार्य स्रोत रहा हो पर वह बहते हुए जल की तरह सबके लिए सुलभ नहीं था। लोग राह चलते नदियों से प्यास बुझा लेते थे। आज नदियाँ भी मटमैली हो चलीं, जहरीले रसायनों ने उन्हें गंदा बना दिया है। पर बहते जल की निर्मलता और तालाब के पानी का गंदलापन जगजाहिर है। आज भी नदियाँ वेगवान प्रवाह के कारण जल के कल्मष को बहा ले जाती हैं। भाषा भी बहते हुए जल की तरह शुद्ध और निर्मलप्रवाही है।

हिंदी की खड़ी बोली का स्वरूप लगभग सवा सौ साल पहले का है। किन्तु इस महादेश में यह सदियों पहले से बोली और बरती जाती रही है। इसका एक सबल उदाहरण कबीर का है। कबीर ने, जो भोजपुरी इलाके की उपज थे, साखी सबद और रमैनी में भोजपुरी के बजाय खड़ी बोली की शैली को बरता। इसलिए कि वे भी जानते थे कि खड़ी बोली हिंदी ही समूचे देश की एक मानक भाषा हो सकती थी। इसे झीनी-झीनी चादर बुनने वाले जुलाहे कबीर ने आज से कितनी सदियों पहले ही भाँप लिया था। आज भी साधु-संत कबीरपंथी गाँव गाँव घूमते हुए कबीर को गाते हैं तो भाषा का सौंदर्य मुखरित हो उठता है। आम आदमी भी कबीर के व्यंग्य और लक्ष्यार्थ को समझ बूझ लेता है। जो लोग भाषा में शुद्धता के हामी हैं वे कहीं न कहीं हिंदी की जटिलता के भी हामी हैं। देखा यह जाता है कि भाषा उसी व्यक्ति की जटिल होती है जिसे अपने विषय का सम्यक ज्ञान नही होता है। सम्यक ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए भाषा की कठिनाई का सवाल उठता ही नहीं। उसके लिए भाषा स्वयमेव रास्ता बनाती हुई चलती है। बाकी काम सरस्वती उसकी जिह्वा पर सवार होकर कर देती हैं।

राजभाषा हिंदी का स्वरूप संस्कृत पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद में ही यह बात कही गयी है कि राजभाषा हिंदी की शब्दावली मूलतः संस्कृत और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आधार ग्रहण कर अपने को समृद्ध करेगी। किन्तु यह संकल्पना भी की गयी कि इसका विकास इस तरह हो कि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि संस्कृत समस्त भाषाओं की जननी और आधारपीठिका है पर केवल इतने से ही आज भाषा का काम नही चलता। आज के उदारतावादी माहौल में भाषा जब तक दुनिया की तमाम भाषाओं के साहचर्य से अपने को विकसित नहीं करेगी तब तक वह अपने शुचिताग्रहों के चलते आम जन से कटी रहेगी।

भाषा में खादी जैसा सौंदर्य विकसित करने में हमारे हिंदी के अग्रणी लेखकों ने योगदान दिया है। इसकी नींव भारतेंदु हरिश्चंद ने रखी, इसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने परिमार्जित किया, प्रेमचंद ने पल्लवित किया है, इसे प्रसाद ने अपने ओज और तेजस से सींचा है, इसे देवकी नंदन खत्री ने आम जनों तक पहुँचाया है। मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रकवि दिनकर ने इसे राष्ट्रव्यापी बनाया है। यह लोकभाषाओं, बोलियों, अपभ्रंश,

प्राकृत और पालि जैसी भाषाओं का आधार लेकर खड़ी हुई है। यह हिंदी की संप्रेषणीयता का ही जादू है कि नेहरू भले ही पश्चिमी सभ्यता में पले पुसे थे, जनता के मध्य हिंदी ही बोलते थे। गाँधी ने भी बैरिस्टरी विदेशी भाषा में ही की पर बातचीत के लिए हिंदुस्तानी अपनाते थे। इसी भाषा में उनका आह्वान सुन कर लोग घरों से निकल पड़ते थे। वह नमक सत्याग्रह हो, अंग्रेजों भारत छोड़ो या करो मरो का नारा— हिंदी स्वदेशी, स्वराज्य और स्वतंत्रता की हर मुहिम में साथ रही है। इसी भाषा में तिलक ने कहा था, स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उनके स्वराज्य में स्वभाषा की महक भी शामिल थी। गाँधी के 'हिंद स्वराज' में अपनी भाषा की गरिमा भी शामिल है। अचरज नहीं कि हिंदी हिंदुस्तानी से प्रेम के चलते ही गांधी ने अपने राजनैतिक उत्तराधिकारी पंडित नेहरू को 'हिंद स्वराज' के मंतव्य को समझाने की गरज से विस्तृत पत्र लिखने का ख्याल सूझा तो वे असमंजस में थे कि किस भाषा में लिखें। वे लिखते हैं : तुमको लिखने का तो कई दिनों से इरादा किया था, लेकिन आज ही उसका अमल कर सकता हूँ। अंग्रेजी में लिखूँ या हिंदुस्तानी में यह भी मेरे सामने सवाल रहा था। आखिर में मैंने हिंदुस्तानी में लिखने को पसंद किया। यह गांधी का हिंदुस्तानी जबान से प्रेम है कि वे पाश्चात्य संस्कृति में पले पुसे नेहरू को पत्र लिखते हैं तो हिंदी में। जबकि वे खुद गुजराती थे। अंग्रेजी दूसरी भाषा के तौर पर सीखी थी पर हिंदी हिंदुस्तानी के प्रति प्रेम तो दरअसल देश प्रेम से जुड़ा था, हिंद स्वराज से जुड़ा था। वे इसे अपनी भाषा मानते थे तभी तो नेहरू को लिखे इसी पत्र में उन्होंने लिखा कि : 'हिंद स्वराज मेरे सामने नहीं है। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खींचूँ। उन्होंने आगे लिखा कि अगर हिंदुस्तान को सच्ची आजादी पानी है और हिंदुस्तान के मारफत दुनिया को भी, तब आज नहीं तो कल देहातों में ही रहना होगा —झोपड़ियों में, महलों में नहीं।' आखिर खादी को लोगों ने 'वस्त्र' ही नहीं, 'विचार' माना था : 'खादी वस्त्र नहीं, विचार है।' हिंदी भी 'भाषा' नहीं, 'विचार' है— 'विचार' है उस स्वदेशी का जो सिर्फ अपनी भाषा में सोचने से संभव है, विचार है उस अहिंसा का जो हमारी भाषा हमें बचपन से सिखाती है। विचार है उस चरखा संस्कृति का जो हमें स्वावलंबन सिखाती है। चरखे से भले सबका तन न ढक सके, पर यह स्वावलंबन का प्रतीक है, कुटीर और ग्रामोद्योग की आधारशिला है। ग्रामीण अर्थशास्त्र से इसका गहरा नाता है।

हिंदी रचनात्मकता का भी एक बड़ा आधार है। राजभाषा से इतर लेखन की इस बड़ी दुनिया की ओर दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि यह हिंदी, 'राजभाषा' की कृत्रिम हिंदी से कितनी अलग और जीवंत है। इसी भाषा का जलवा है कि बाँग्ला के लेखकों को उनके प्रांतों से बाहर हिंदी लेखकों जैसा सम्मान हासिल है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरच्चंद्र, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, आशापूर्णा देवी आज बाँग्ला के नहीं, हमारे अपने हिंदी के लेखक लगते हैं।

राजभाषा हिंदी के रोजगार में अरसे से हूँ तथा अनुवाद की विडंबनाओं से सदैव दो चार होना पड़ता है। पहले डिक्शनरी देख कर अनुवाद करना होता था, अब व्यावहारिक तौर पर ग्राह्य हिंदी में अनुवाद करता हूँ। कोशिश होती है कि हिंदी लेखन में बरती जाने वाली शुद्धता अनुवाद में घुसपैठ न करने पाए। यह अनुभव बैकिंग जगत का है। दूसरे कामकाजी क्षेत्रों में पारिभाषिकी की ऐसी ही दिक्कतें हैं। दरअसल हिंदी शब्दावली के पुरोधा, डॉ. रघुवीर जिनके प्रयत्नों पर भारत सरकार का वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के भाषाई कोश का आधार टिका है, ने हर अंग्रेजी शब्द को हिंदी प्रतिशब्द में बदलने का बीड़ा उठाया था और काफी हद तक उन्हें सफलता भी मिली। पर यही वह युग है जब हिंदी के जड़ जमाते ही लौहपथगामिनी जैसे उपहासास्पद अनुवादों को सामने कर हिंदी की जटिलता का आभास कराया जाता रहा है। पत्रकारिता यदि अनुवादों और भाषा प्रयोगों में मध्यम और व्यावहारिक मार्ग न अपनाए तो वह जनता के पल्ले न पड़े। डॉ. रघुवीर का शब्दकोश इतना प्रथुल है कि नाजुक कलाइयों से नहीं उठ सकता। उन्होंने रोड को रथ्या, मिट्टी के तेल को मार्तेल, कैनाल को कुल्या, रेल को संयान, रिक्शा को नरयान, नेक टाई को कंठाभूषण, मीटर को मान, रेडियो को नभोवाणी जैसे हजारों शब्दों को हिंदी प्रतिशब्द दिये पर उनके बहुतेरे शब्द प्रचलन की पायदान पर नहीं चले। यद्यपि कोशों की दिशा में उनका योगदान अप्रतिम है। पर आज जो हिंदी का स्वरूप है वह व्यावहारिक है। कुछ अखबारों ने भी पं. सुंदरलाल की हिंदुस्तानी के प्रभाव में अनिश्चितकालीन को बेमियादी और बेमुद्दत के रूप में चलाने की कोशिश की, पर वह भी ज्यादा व्यावहारिक न लगता था, क्योंकि अनिश्चितकालीन तब तक प्रचलन में आ चुका था। मियादी या बेमियादी से बुखार का सम्बंध ज्यादा सटीक लगता था, बनिस्बत हड़ताल के। इसी तरह आज प्रसूतिगृह, शयनयान जैसे शब्द प्रचलन

> राजभाषा के प्रहरियों और कोशकारों ने हिंदी को दुरूह बनाने में मदद की है, इसमें संदेह नहीं, पर व्यापक हिंदी समाज को भी जैसे हिंदी की कोई आवश्यकता नहीं महसूस होती। रोजी-रोटी के लिए जद्दोजहद ने भाषा की लड़ाई को हाशिये पर डाल दिया है।

> भाषा प्रचलन से व्यवहार में आती है, उससे भागने बिदकने में नहीं। कहा भी गया है: अनभ्यासे विषम् शास्त्रम। अखबारों ने निस्संदेह हिंदी को व्यावहारिक रूप देने में मदद की है लेकिन यही वह मंच है जिससे खराब हिंदी को भी प्रोत्साहन मिला है।

में आ चुके हैं। पंडित सुंदरलाल ने प्रसूति गृह को जच्चाघर तथा चेयरमैन को मसनदी कहने की मुहिम चलाई किन्तु अध्यक्ष पद को धड़ल्ले से ग्रहण किया गया और अब वह हमारे बोलचाल का हिस्सा बन चुका है। इसी तरह इमरजेंसी को अचानकी, गवर्नमेंट को शासनिया, प्रेसीडेंट को राजपति, साइकोलॉजी को मनविद्या जैसे प्रतिरूप देने की कोशिशें हुईं किन्तु आम जनता ने इन कोशिशों को न अपना कर मध्यम मार्ग ग्रहण करना उचित समझा।

भाषा प्रचलन से व्यवहार में आती है, उससे भागने बिदकने में नहीं। कहा भी गया है: अनभ्यासे विषम् शास्त्रम। अखबारों ने निस्संदेह हिंदी को व्यावहारिक रूप देने में मदद की है लेकिन यही वह मंच है जिससे खराब हिंदी को भी प्रोत्साहन मिला है। बिहार में 'चार चोर पकड़ाए' जैसी हिंदी चलाने की कोशिशों में बड़े अखबार घराने भी शामिल हैं, अर्थात उस स्थान की बोलचाल की हिंदी को ही बरतने की कोशिश। क्या यह स्थानीयता को भुनाने की कोशिश में गलत हिंदी को प्रोत्साहन देना नहीं है। अभी भी देश की खासी जनसंख्या इन्हीं अखबारों से लोक भाषा सीखती है, ऐसे में जब अखबार ही ऐसी हिंदी सिखाने लगें तो कोई क्या करे। राजधानी दिल्ली का एक नामी गिरामी अखबार कैसी हिंदी चला रहा है, यह क्या किसी से छिपा है।

सवाल यह है कि हम समाज को कैसी हिंदी दे रहे हैं?

मैं डॉ. नगेन्द्र के पर्यवेक्षण में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के 'तत्सम कोश' से संबद्ध रहा हूँ। पंद्रह भारतीय भाषाओं के इस कोश में सभी भाषाओं में कुछ आमफहम शब्द हैं जिनका आधार संस्कृत रहा है। इसलिए कोश के कार्यव्यापार से यत्किंचित परिचित हूँ। यह उतना आसान भी नहीं है जितना दूर से दिखाई पड़ता है। आज जरूरत हिंदी को आसान बनाने की है, पर इस आसानी के लिए 'हाइपोथिकेशन' को 'दृष्टिबंधक' के बजाय 'नजरबंदी' न कर दिया जाए। राजभाषा हिंदी की दुर्बोधता के लिए कुछ तो इसकी कठिन पारिभाषिकी जिम्मेदार है कुछ हमारी संस्कृतनिष्ठ पदरचना। इसके चलते हमने भाषा को बोलचाल के निकट ले जाने के बजाय औपचारिक संबोधनों में बदल दिया है।

आज की पारिभाषिकी का आधार भले ही संस्कृत हो किन्तु भाषा के व्यवहार में बीच का रास्ता हमेशा उचित होता है। आज भूमंडलीकरण और उदारीकरण के चलते आर्थिक नाकेबंदियाँ टूटी हैं। वैश्विक ग्राम के इस नैकट्य ने लोगों को एक-दूसरे के काफी समीप ला दिया है। इसने अनेक भाषाओं के शब्दों की आवाजाहियाँ सरल की हैं जो कि विभिन्न भाषाभाषी लोगों की निर्बाध आवाजाहियों के चलते संभव हुआ है। इससे हिंदी पर दीगर भाषाओं के शब्दों का दबाव बेशक बढ़ा है किन्तु इसने हिंदी की विशाल हृदयता को स्वीकारा भी है। याद करें तो हिंदी के विकास का काम सदियों से होता चला आ रहा है। बोलियों के प्रभाव से जहां हिंदी का शब्द भंडार समृद्ध हुआ है, वहीं उसके बोलचाल के स्वरूप में भिन्नताएँ भी देखी जाती हैं। एक सदी हिंदी की खड़ी बोली के स्वरूप को स्थिर करने में ही गुजर गयी। तथापि ऐसे प्रयत्नों को विराम नहीं देना चाहिए। भवानीप्रसाद मिश्र कहा करते थे : जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख। खड़ी बोली के वैविध्य को लेकर अतीत में व्यापक बहसें चली हैं। रामविलास शर्मा ने आधा दर्जन से ज्यादा पुस्तकें केवल भाषा की समस्या को लेकर लिखी हैं जिनमें इन बहसों का विस्तार से उल्लेख है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी की खड़ी बोली के गद्य की आधारशिला रखी तो महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और बाबू गुलाब राय जैसे लेखकों ने उसे ऊँचाइयों पर पहुँचाया। बाबू गुलाब राय ने तो अपने एक निबंध में इसके प्रसार के लिए प्रोफेसरों के कुछ कर्तव्य निर्धारित किए थे। अचरज नहीं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी गद्य के परिमार्जन के इतने पक्षधर हुआ करते थे कि उन्होंने अनेक जगह भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त जी जैसे लेखकों तक की खासी आलोचना की है। पर भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान इससे कम नहीं आँका जा सकता। यहाँ तक कि बालमुकुन्द गुप्त के न रहने पर रायकृष्ण दास के यह पूछने पर कि हिंदी में किस लेखक ने उम्दा गद्य रचा है, उन्होंने बालमुकुंद गुप्त का नाम लिया था। भारतेंदु जी की पद्य रचना ब्रज के प्रभाव से समन्वित है। 'रसा' नाम से लिखी उनकी शायरी देखें तो लगेगा कि उर्दू शैली से भी उनकी खासी रब्त जब्त थी : एक नमूना देखें– *दिल मेरा ले गया दग़ा करके/ बेवफा हो गया वफा करके।* भारतेन्दु इस बात के समर्थक थे कि हिंदी में वैज्ञानिक विषयों का लेखन संभव है। हिंदी के आधुनिक स्वरूप को विकसित करने में 'सरस्वती' ने

महत्वपूर्ण योगदान किया है। हिंदी में तमाम आधुनिक लेखक 'सरस्वती' में छप कर चर्चित हुए और अपने समय के प्रतिष्ठित लेखकों कवियों में शुमार किए गए। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं कई भाषाओं के ज्ञाता थे। अपने संपादन काल में उन्होंने 'सरस्वती' को वह दर्जा दिया जहाँ छपना केवल साहित्य के उच्च मानकों पर ही खरा उतरना नहीं था, बल्कि भाषा की आधुनिकता के मानकों पर भी खरा उतरना था। हिंदी की विकास यात्रा में शामिल रचनाकारों पर गौर करें तो प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त, गुलेरी, प्रेमचंद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध एक से एक दिग्गज लेखकों ने हिंदी की खड़ी बोली के मौलिक सौंदर्य को अपनी रचनाओं में मुखरित किया है।

राजभाषा हिंदी का बोलबाला संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधानों के बाद हुआ है। किन्तु अनेक सरकारी, गैर सरकारी संस्थानों, तकनीकी साहाय्य एवं प्रोत्साहनों के बाद और आजादी के इतने वर्षों बाद भी यह एक संवैधानिक धक्के से ही चल रही है, स्वतःस्फूर्त प्रयासों से नहीं। स्वतःस्फूर्त प्रयास राजभाषा प्रावधानों के बाहर हो रहे हैं। हिंदी बाहर चौराहों पर बन रही है, गली कूचों, मुहल्लों, गांव देहात में ढल रही है। कारोबारियों, व्यवसायियों के बीच व्यवहृत हो रही है। मुद्रित और इलेक्ट्रानिक माध्यमों में वह पल्लवित पुष्पित हो रही है। किन्तु वह राजभाषा की अटपटी पारिभाषिकी से कतई परिचालित नही है। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि आज हिंदी जो विश्व भाषा बनी है उसके मूल में वे लाखों हिंदुस्तानी हैं जो सस्ती मजदूरी कराने के लिए भारत से ले जाए गए। अपनी भाषा के प्रति इनकी ममता उन भारतवासियों की अपेक्षा कहीं अधिक है जो ब्रिटेन और अमरीका में बस गए हैं और अपनी भाषा बोलने में असमर्थता प्रकट करते हैं।

भाषा में खादी की रंगत तभी आ सकती है जब उसके स्थापत्य में, उसके टेक्स्चर में हिंदी की मौलिक विशेषताओं का ख्याल रखा जाए। जब हम हिंदी पत्रकारिता में बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे प्रतिबद्ध हिंदी सेवकों की बात करते हैं तो आधुनिक पत्रकारिता में रघुवीर सहाय, राजेन्द्र माथुर तथा प्रभाष जोशी जैसे पत्रकारों के योगदान को अनदेखा नहीं कर सकते जिन्होंने बोलचाल की हिंदी को अपने अग्रलेखों के माध्यम से आगे बढ़ाया। नई दुनिया स्कूल से निकले और नवभारत टाइम्स के संपादक रहे राजेन्द्र माथुर के संपादकीयों एवं अग्रलेखों की चर्चा केवल उनके विषय-निरूपण के कारण ही नहीं, भाषा के अपने बुनियादी मिजाज और मुहावरे के उपयोग के कारण भी होती है। प्रभाष जोशी के लंबे आलेख

राजभाषा हिंदी का बोलबाला संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधानों के बाद हुआ है। किन्तु अनेक सरकारी, गैर सरकारी संस्थानों, तकनीकी साहाय्य एवं प्रोत्साहनों के बाद और आजादी के इतने वर्षों बाद भी यह एक संवैधानिक धक्के से ही चल रही है, स्वतःस्फूर्त प्रयासों से नहीं।

यदि एक सांस में पढ़े जाने का आकर्षण रखते हैं तो यह भी उस जबान का जादू है जो गांधी के हिंदी-हिंदुस्तानी से होता हुआ एक आम 'लिंगुआ फ्रांका' में तब्दील होता हुआ खादी जैसा विलक्षण सौंदर्य उपस्थित करता है। प्रभाष जोशी और राजेन्द्र माथुर जैसी चुम्बकीय भाषा का आकर्षण हम आज भी राजभाषा कही जाने वाली हिंदी के औपचारिक लबो लहजे में नहीं ला पाए हैं। इसीलिए वह अटपटी, दुरूह और 'यह किस देश प्रदेश की भाषा है' के आरोपों से लांक्षित होती आ रही है। एक समय था, आकाशवाणी पर कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के गँवई गाँव के रस में पगे और पांडित्य से दूर निबंधों को सुनते हुए बोलचाल की हिंदी की लय और सुगंध वातावरण में भर जाती थी। रामविलास शर्मा से बातचीत करते हुए एक क्षण भी यह अहसास नहीं होता था कि हम भाषा और विचारधारा के किसी महापंडित की छत्रछाया में बैठे हैं। यहाँ तक कि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने भी बोलते और लिखते हुए सदैव बोलचाल के गद्य का लहजा बरकरार रखा। आम बोलचाल की हिंदी में उन्होंने अपने समय की अनेक साहित्यिक, वैचारिक, सांस्कृतिक और भाषाई गुत्थियाँ सुलझाईं तथा यह सिद्ध किया कि अच्छे वक्ता और लेखक भाषाई सरलता की लीक अपनाते हैं जबकि खराब वक्ता और लेखक कठिन गद्य के प्रेत बन कर न केवल भाषा के ओज और माधुर्य की हत्या करते हैं बल्कि विषय को भी दुरूह और अपठ्य बना देते हैं।

हमारी भाषा में खादी की रंगत हो, कौन नहीं चाहता। सदियों के सफर में हिंदी ने व्यापक शब्द संपदा जुटा ली है। बेव परिदृश्य में हिंदी ने अपनी व्यापक पहुँच बना ली है। इंटरनेट के माध्यम से तमाम सोशल साइटस पर विश्व भर के लोगों की आवाजाही है। कम्प्यूटर कंपनियों के कंसार्टियम से

संभव यूनीकोड और हिंदी टाइपिंग टूल व इंटेलीजेंट कीबोर्ड के आ जाने से हिंदी सुगमता से तकनीक पर आरूढ हो चुकी है। अब मोटे-मोटे शब्दकोशों की शरण में जाने की बजाय नेट पर आसानी से कोश उपलब्ध हैं। यह अलग बात है कि भले ही अभी भी दो प्रतिशत जनता भी इंटरनेट से न जुड़ पाई हो तथापि इसके प्रभाव से हिंदी का परिदृश्य अछूता नहीं है। इंटरनेट पर वैश्विक उपस्थिति से हिंदी का रंग-रूप बदला है। वह अंग्रेजी और दीगर भारतीय भाषाओं के शब्दों के समामेलन से एक नये भाषिक कोलाज की अनुभूति दे रही है। जैसे नदियाँ बेरोकटोक बहती हैं, हमेशा वही पानी नदी में नहीं रहता जो बह रहा होता है। भाषा भी नदी की तरह प्रवहमान है। उसका एक मानक रूप कभी भी स्थिर नहीं किया जा सकता। हर लेखक यदि अपनी लेखन शैली का निर्माता होता है तो हर बोलने वाला भाषा को अपनी शैली से सींचता और संवर्धित करता है। वही उस व्यक्ति की पहचान होती है। गाँधी ने एक गुजराती से टूटी-फूटी हिंदी सीखी जिसने कुछ दिन बनारस में रह कर अध्ययन किया था। रामविलास शर्मा ने तालस्ताय का एक उदाहरण दिया है कि कैसे वे एक बार एक गाँव में गए और तभी दो एक दिनों बाद उन्हें खोजते हुए कुछ युवा साहित्यिक उस गाँव में पहुँच गए और उनसे पूछा कि वे वहाँ क्या कर रहे हैं? — तो पचहत्तर वर्षीय तालस्ताय ने कहा कि मैं इन ग्रामीणों के बीच रूसी भाषा सीख रहा हूँ। ऐसे उदाहरण हिंदी में विरल हैं। आज सारे उद्यम अंग्रेजी सीखने के लिए होते हैं, हिंदी के लिए नहीं। यहाँ तक कि हिंदी के रोजगार में लगे हुए लोग भी हिंदी सीखना नहीं चाहते। राजभाषा के प्रहरियों और कोशकारों ने हिंदी को दुरूह बनाने में मदद की है इसमें संदेह नहीं किन्तु व्यापक हिंदी समाज को भी जैसे हिंदी की कोई आवश्यकता नहीं महसूस होती। इसी दुरूहता के चलते बाबू गुलाब राय को एक निबंध लिख कर पूछना पड़ा था : क्या हिंदी दुरूह बनाई जा रही है। एक समय था, आत्मसम्मान को जरा-सी ठेस लगने पर रेलवे की दो सौ रूपये महीने की नौकरी को लात मार कर बीस रूपये महीने पर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' की संपादकी स्वीकार की थी। यह भाषा साहित्य और संस्कृति की सेवा करने का जज्बा था। आज यह भावना सिरे से बिला गई है। रोजी रोटी की लड़ाई ने भाषा की लड़ाई को हाशिए में डाल दिया है; और फिर जो भाषा रोजी रोटी भी न दे सके उसके पैरोकार भी क्योंकर खड़े होंगे? लेकिन यही वह भाषा है जिसमें बकौल उदयप्रकाश 'हर पाँचवें सेकंड पर इसी पृथ्वी पर जन्म लेता है एक और बच्चा और इसी भाषा में भरता है किलकारी और कहता है— माँ।'

> *हिंदी की कठिनाई का जो रोना अक्सर रोया जाता है वह इस कारण है कि भाषा के प्रसार और विकास में हमने उन तबकों को साथ नहीं लिया जो इन्हें व्यवहार में लाते हैं। हमने इसे केवल भाषा वैज्ञानिकों और कोशकारों के हवाले छोड़ दिया। लिहाजा जो नैसर्गिक शब्दावली हिंदी में विकसित हो सकती थी, वह नहीं हो सकी।*

हिंदी की कठिनाई का जो रोना अक्सर रोया जाता है वह इस कारण है कि भाषा के प्रसार और विकास में हमने उन तबकों को साथ नहीं लिया जो इन्हें व्यवहार में लाते हैं। हमने इसे केवल भाषा वैज्ञानिकों और कोशकारों के हवाले छोड़ दिया। लिहाजा जो नैसर्गिक शब्दावली हिंदी में विकसित हो सकती थी, वह नहीं हो सकी। भाषा की खादी कहते वक्त लगता है कि यह कोई नई ईजाद है। हिंदीवादी, संस्कृतनिष्ठतावादी, हिंदुस्तानी जैसे वर्गीकरणों की तरह ही यह भाषा की कोई किस्म है। पर नहीं, यह भाषा की कोई किस्म नहीं पर यह वह उपक्रम है जिस पर चल कर हिंदी को शुद्धतावादी नस्लवादी भेदभाव से दूर रखते हुए आम आदमी की, साथ ही कामकाज की भाषा के रूप में विकसित किया जा सकता है। आज साहित्य में जिस सेंथेटिक शब्दावली पदावली के प्रयोग की आलोचना की जाती है, वह इसी कारण है कि भाषा के बरतने वाले को भाषा के मिजाज का पता नहीं है। आखिर उर्दू में लिखने वाले प्रेमचंद हिंदी में क्यों आए और क्यों इतने लोकप्रिय हुए। प्रेमचंद को किसानी जीवन की समझ थी। मजदूर जीवन की समझ थी। उनका मानना था कि हिंदी या राष्ट्रभाषा केवल रईसों और अमीरों की भाषा नहीं हो सकती, उसे किसानों और मजदूरों की भाषा बनना पड़ेगा। आखिर अपनी ऐसी ही सरल भाषा में उन्होंने जान गालसवर्दी की रचना 'द स्ट्राइफ' का अनुवाद किया। किसानों मजदूरों और गाँव देहात की भाषा क्या हो सकती है और इस भाषा का जादू कैसे लोगों पर छा सकता है, प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के जरिए बताया। उन्होंने उर्दू और हिंदी के समामेलन से एक ऐसा भाषिक रसायन तैयार किया जिसे बच्चे बूढ़े और जवान सब पढ़ सकते थे। इसके लिए सिर्फ हिंदी के कामचलाऊ ज्ञान के अलावा ज्यादा तालीम की कोई दरकार न थी। इसी भाषा की वकालत समय समय पर गाँधी जी ने की। वे चाहते थे कि राजनीतिक बैठकों, सम्मेलनों में न

केवल उत्तर भारत के बल्कि द्रविड़ भाषाओं के जानकार भी कामचलाऊ हिंदी में बोलें। ऐसा उन्होंने कांग्रेस के कई अधिवेशनों में कहा और दबाव डाला। उन्होंने वस्त्रों में खादी का सपना देखा तो भाषा में हिंदुस्तानी का। उन्होंने वही मानक दूसरों के समक्ष रखा जिस पर वे खुद अमल कर सकते थे। वे चरखा खुद कातते थे, इसलिए चरखे के महत्व से देशवासियों को अवगत करा सके। यकीन मानिये आज देश के हर व्यक्ति के पास चरखा होता तो वह अपनी जरूरत भर के लिए कपड़े जरूर जुटा सकता। जहाँ-जहाँ आज भी पावरलूम और हैंडमेड खादी के करघे हैं वहाँ इसी तरह वस्त्रों का निर्माण हो रहा है। बस आज हममें यह धीरज नहीं रहा, दूसरे सफाईपसंद मिलों और मल्टीनेशनल कंपनियों ने हजारों लाखों बुनकरों के काम छीन लिए हैं।

लेकिन केवल इससे गाँधी जी का विजन अप्रासंगिक नहीं हो जाता। उन्होंने भाषा की दिशा में जिस हिंदी हिंदुस्तानी का प्रचार किया, उसे इस देश की आम जनता पहले से बोलती थी। गांधी हिंदी में उतने ही तालीमयाफ्ता थे जितना कोई इस देश का किसान और मजदूर हो सकता है। उन्होंने अपनी सरलता से जाना कि हिंदी में कामचलाऊ बातचीत आसानी से की जा सकती है। उनकी मुहिम पर ही देश भर में हिंदी प्रचार सभाओं ने जन्म लिया। हिंदी साहित्य सम्मेलन की नींव पड़ी। क्या पता गांधी जी की इस प्रेरणा का ही नतीजा रहा हो कि प्रेमचंद जैसे कद्दावर लेखक हिंदी का रास्ता अख्तियार कर लिया। यही वह भाषा थी जिसे देश की आम जनता बोलती समझती थी। मुगलों के शासन के चलते आम जनता में तमाम उर्दू फारसी शब्दों ने जगह बना ली थी। प्रशासन, कचहरियों, थानों, अदालतों आदि में जहाँ जनता की ज्यादा आवाजाही है, वहाँ पहले उर्दू में ही कामकाज होता था, तहरीरें लिखी जाती थीं, आजादी के बाद और प्रदेशों में वहां की भाषा को राजभाषा बनाए जाने के बाद हिंदी में कामकाज शुरु हुआ। पर आज भी देखें तो इन अनुशासनों की भाषा आज भी हिंदुस्तानी है यानी हिंदी और उर्दू का सहमेल। आज भाषा में खादी के सौंदर्य की इतनी दरकार होती तो कृषि संबंधी कोशों में कम से कम देश के कुछ किसानों को सहयोजित किया गया होता और पूछा गया होता कि अमुक-अमुक काम के लिए आपके यहां कौन-सा शब्द प्रयोग में लाया जाता है, और तब उनके सुझाव से जो शब्दावली बनती वह निश्चय ही किसानों के लिए, कृषि वैज्ञानिकों के लिए ज्यादा काम की होती। वह यों ही लाइब्रेरियों में धूल खाती नही रहती। रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी लेखक ने सदैव यह कहा कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ अपने कामकाज पहले हिंदी में करें जो कि अपने को सर्वहारा और देश के किसानों और मजदूरों से जोड़ती हैं। उन्होंने दूसरे दलों के लिए भी यह जरूरत जताई कि ये दल जो जनता के लिए काम करते हैं अपने कार्यक्रम और एजेंडे हिंदी में क्यों नहीं बनाते।

भाषा के निर्माण में हमारी बोलियों ने अहम योगदान दिया है। बोलियाँ न होतीं और इतनी प्रभावी न होतीं तो नानक के पदों में ब्रज का बोलबाला न होता। रसखान के हिंदी के बड़े कवि न कहलाते। जायसी और तुलसी जन जन में छाये न होते। सूरदास के पदों का लालित्य सर चढ़ कर न बोलता। विद्यापति मैथिली में लिखने के बावजूद हिंदी के सिरमौर कवि न कहलाते। अवधी, बुंदेलखंडी, ब्रज, मालवी, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी ने आधुनिक हिंदी को खड़ा किया है। केवल संस्कृत के बलबूते वह पूजापाठ के योग्य तो बन सकती थी लिंगुआ फ्रैंका का दर्जा हासिल न कर पाती। इन बोलियों का ही वैभव है कि हिंदी के जो भी आधुनिक कवि लेखक हैं, उनके यहाँ ऐसे अनके शब्द मिलेंगे जो इन बोलियों से लिये गए हैं। अज्ञेय के यहाँ ऐसे बहुतेरे शब्द आते हैं जिन्हें रामविलास जी कहते थे कि यह ऊपर से टाँका गया लगता है। यह बाजरे की कलगी की तरह है, पर देखें तो नफासत भरे अज्ञेय को भी भाषा की खादी पसंद थी। उसका स्थापत्य उन्हें भाता था। वृंदावन लाल वर्मा, जैनेन्द्र और प्रेमचंद के उपन्यासों और सुदर्शन व विश्वंभर नाथ शर्मा कौशक की कहानियों को पढ़ने के लिए किसी शब्द के लिए कोश की शरण लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। अज्ञेय और निर्मल वर्मा में होती है क्योंकि आधुनिकता के वशीभूत होकर और पश्चिम के साहित्य से प्रभावों के अनेक लक्षण उनकी भाषा में दीख पड़ते हैं। भाषा की इस खादी का बुनकर कौन है। क्या लेखक और कवि। बिल्कुल नहीं। ये तो उसके उपभोक्ता या प्रयोक्ता भर हैं। इस भाषा के कारीगर गांव-देहात में, कस्बों और छोटे शहरों में हैं। यह भाषा आपको फिरोजाबाद के चूड़ी बनाने

"रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी लेखक ने सदैव यह कहा कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ अपने कामकाज पहले हिंदी में करें जो कि अपने को सर्वहारा और देश के किसानों और मजदूरों से जोड़ती हैं।"

> देश को आजाद हुए कई दशक हो गए। किन्तु आज भी कुछ अंग्रेजी स्कूलों में बच्चों को हिंदी बोलने के लिए दंडित किए जाने की खबरें मिलती रहती हैं। क्योंकि हिंदी तो जन्मजात गंवारों, जाहिलों और इंडियन नेटिव्स की भाषा मानी जाती रही है।

वाले कारीगरों के बीच सुनाई देगी तो चौक-चौराहों, लोहामंडियों, ठठेरी बाजारों, जुलाहों, किसानों, मजदूरों, खदान में काम करने वालों, रोपनी, निराई गुड़ाई से लेकर तमाम सांस्कारिक अनुष्ठानों में व मेले ठेले जाते हुए गउनई गाने वाली महिलाओं में सुनाई देगी। यही वह भाषा है जो कभी चटकल मिलों के कामगारों के बीच बोली और समझी जाती थी। यह वही भाषा है जिससे एक आदमी गाँव में अपनी सारी जिन्दगी काट देता है। एक बच्चा अपनी जिस थोड़ी-सी भाषा से अपना काम चला लेता है। यह वही भाषा है जो हम मदारियों की जबान से सुनते हैं, जिसे बोल कर एक राजनेता चौराहों पर भीड़ जमा कर लेता है। यह वही भाषा है जिसमें आह्वान करने पर लोग घरों से बाहर निकल पड़ते हैं। यह वही भाषा है जिसे रईस और रसूखदार लोग अपने नौकरों, मजदूरों से सीख कर हिंदी में अहसान जताया करते थे। गलती यह हुई कि इस भाषा से धीरे धीरे अभिजात वर्ग ने अपने को काट लिया ताकि इन तबकों से भद्र समुदाय की दूरी बनी रहे। यह वर्गविभेद कायम रहे। यही वजह है कि आजाद भारत में शब्दकोशों, पाठ्यक्रमों का जिस तरह निर्माण किया गया उसमें कठिन और अनूदित हिंदी का बोलबाला रहा जो कि न तो जनता की जबान पर चढ़ सकी न विद्यार्थियों व अध्यापकों की।

आज वातावरण बदला है। अब हिंदी में काम करना उतना हेय नहीं माना जाता जितना पहले माना जाता रहा है। हालाँकि एक तरह का श्रेणीकरण आज भी समाज में मौजूद है। दफ्तरों में हिंदी में काम करने वाले के प्रति कोई सदाशयी दृष्टि नहीं रखता। अंग्रेजी को आज भी नौकरियों में, पढाई में, प्रबंधन में, प्रशासन में वही रुतबा हासिल है जो पहले रहा है। यह व्यक्ति की शख्सियत का वह कवच कुंडल है जो देखने में भले ही शोभादायक हो, पर जिससे राष्ट्रीय अस्मिता का भला नहीं होने वाला। भाषा वही है जो सुनते ही कर्ण कुहरों में एक संगीत की तरह घुल जाए, जिसे हर शख्स आसानी से समझ सके। भाषा वही है जो आदमी-आदमी में केवल इसी वजह से भेद न पैदा करे कि वह कोई दीगर भाषा जानता है जो किसी दृष्टि से किसी भाषा से उच्च समझी जाती है। क्योंकि रंगभेद केवल त्वचा का नहीं भाषा के व्यवहार के प्रति भी रहा है। गाँधी जी ने इसी भाषा के लिए ट्रेनों में अंग्रेजों के कोड़े खाए हैं। तमाम गुलाम देशों के नागरिकों को ऐसी ही औपनिवेशिक भाषाएं बरसों तक हिकारत की नजर से देखती रही हैं। देश को आजाद हुए कई दशक हो गए। किन्तु आज भी कुछ अंग्रेजी स्कूलों में बच्चों को हिंदी बोलने के लिए दंडित किए जाने की खबरें मिलती रहती हैं। क्योंकि हिंदी तो जन्मजात गंवारों, जाहिलों और इंडियन नेटिव्स की भाषा मानी जाती रही है। हिंदी को आज एक नेटिव लैंग्वेज की दृष्टि से नहीं, ज़मीनी समझ की भाषा के रूप में विकसित और प्रयोग किए जाने की जरूरत है। तब जो भाषा बन कर निखरेगी, कामकाज में, साहित्य में, खेतों और खलिहानों, कल कारखानों में, वह यही भाषा की खादी होगी जिसकी चमक और सादगी दूर से ही दिखाई देगी जैसे आज भी सेंथेटिक कपड़ों के बीच शतप्रतिशत सूती वस्त्रों की। भाषा को आज इसी संस्कार की जरूरत है।

भाषा में खादी के संस्कारों की जरूरत आज भले आन पड़ी हो, जीवन में खादी की दरकार किसी को नहीं है। कुछ राष्ट्रभक्तों के लिए जरूर संस्कारवश खादी उनके विचारों का गहना है, सादा जीवन उच्च विचार का प्रतीक है। पर आज खादी राजनेताओं की भी पसंद नहीं रही। आम आदमी की कौन कहे। उसकी खरीद पर सरकार की ओर से छूट है फिर भी खादी का कोई नामलेवा नहीं है। यह आम मिलों के कपड़ों से कहीं अधिक मँहगी है तथा इसके रखरखाव पर कहीं ज्यादा जहमत भी है। फिर कौन खादी की ओर रुख करे। लेकिन भाषा को खादी की-सी रंगत देने में अपने पास से कोई रोकड़ नहीं खर्च करना। भाषा की मौलिक और बुनियादी भंगिमाओं को उसके खुरदरेपन के साथ रख देना उसे ताकतवर बनाना है। आज जिस तरह की सेंथेटिक भाषा हमारे दिलोदिमाग में जगह बनाए हुए है, उसमें हिंदी समाचारों की तरह आरोह-अवरोह जैसे नदारद हों। भाषा जैसे किसी रिफाइनरी से होकर हमारे पास पहुंच रही है। सरकारी कामकाजी हिंदी अपनी इसी एकरसता के कारण अपने मूल से कट गयी है। जरूरत है भाषा को उसके उदगम के निकट से निकट ले जाने की, उन बुनियादी मुहावरों और सरोकारों से रचने सींचने की जो स्थानीय बोलियों के संसर्ग से पैदा होते हैं और आबोहवा में छा जाते हैं। भाषा में खादी के संस्कारों को जीवित करने के लिए ऐसे उद्यमों की आज कहीं अधिक जरूरत है।■

पल्लवी सक्सेना
भोपाल में जन्म. नूतन कॉलेज, भोपाल से बी.ए. एवं अँग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. विगत ५ वर्षों से लंदन में निवास. हिन्दी ब्लॉग जगत की सक्रिय सदस्य एवं मेरे अनुभव (http://mhare-anubhav.blogspot.com) हिन्दी ब्लॉग लिखती हैं.
सम्पर्क : pallavisaxena80@gmail.com

विचार

प्रवासी भारतीय और हमारे बुज़ुर्ग

यूँ तो जब से दुनियाभर में संयुक्त परिवारों का चलन खत्म हुआ है तब से बुज़ुर्गों की अहमियत केवल जरूरत पड़ने पर ही समझ आती है अन्यथा आजकल की आधुनिक जीवन शैली के चलते सभी अपनी-अपनी ज़िंदगी में इतने व्यस्त हो गए हैं कि पति-पत्नी को स्वयं एक-दूसरे के लिए या यूँ कह लीजिये स्वयं अपने घर परिवार के लिए समय नहीं है तो फिर बुज़ुर्गों की तो बात ही क्या। आधुनिकता की अंधी दौड़ में और पश्चिमी सभ्यता की नकल करने के चक्कर में हम इस क़दर उलझ चुके हैं कि हम खुद अपने संस्कार और सभ्यता को भूलते जा रहे है। कुछ लोग इस तरह की जीवन शैली को आधुनिक होने का प्रमाण मानते हैं इसलिए भले ही अंदर से इच्छा हो या न हो लेकिन दिखावे के लिए वह सब करते हैं जो उन्हें करने की जरूरत ही नहीं है। मसलन नौकरी, वैसे तो आज के परिवेश में एक अच्छा जीवन गुजारने के लिए एक व्यक्ति की आमदनी काफी नहीं है इसलिए महिलाओं का नौकरी करना भी ज़रूरी हो गया है और यह सिर्फ पैसा कमाने के लिए बल्कि आत्मनिर्भर बनने के लिए भी उतना ही आवश्यक है क्योंकि महिलाओं और पुरुषों के अधिकारों में कोई भेद नहीं है दोनों ही के अधिकार एक जैसे और बराबर हैं इसलिए महिलाओं को भी उनका पूरा हक़ मिलना चाहिए इसमें कोई दो राय नहीं किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि महिलायें या पुरुष अपनी-अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से मुँह फेर लें।

महिलाओं का घर के काम को लेकर यह कहना कि हम को तो घर का काम आता ही नहीं है। हमने अपने मायके में काम किया ही नहीं अब भला काम कैसे करें। या किसी पुरुष का यह कहना कि घरेलू काम जैसे सब्ज़ी लाना या बच्चों को सम्हालना औरतों का काम है आदि कहना कहां तक उचित है। ज़िंदगी रूपी गाड़ी में औरत-मर्द दो पहियों जैसे हैं। जब वे समान रूप से चलेंगे तभी गाड़ी सही चल पाएगी और यदि एक भी पहिया गड़बड़ाया तो समझो गयी भैंस पानी में अर्थात इस गड़बड़ का सीधा असर परिवार पर पड़ता है।

आधुनिक दौर में हालात ही ऐसे होते जा रहे हैं कि महिलाओं को अपने हक़ और अधिकारों के लिए लड़ने के बावजूद भी उनका हक़ नहीं दिया जा रहा है यहाँ तक कि उन्हें अपने लिए एक सुरक्षित जीवन जीने के लिए भी सामाजिक सहयोग और कानूनी सहायता तक उपलब्ध नहीं

है इसलिए आजकल के अभिभावक अपनी बेटियों को यह सीख देते हैं कि बेटा तुम पढ़ी लिखी हो, नौकरी पेशा हो, आत्मनिर्भर हो, तुम्हें किसी से डरने की जरूरत नहीं है।

यह ठीक है कि आजकल लड़के और लड़की में कोई फर्क नहीं है, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि लड़का या लड़की अपने-अपने कर्तव्यों को भूलकर केवल अपनी मनमानी करें और नतीजा भुगतें घर के बुज़ुर्ग। परिवार के बिखराव का खामियाजा बुजुर्गों को भुगतना पड़ता है।

बच्चों की ख़ातिर अपना घर-बार अपने नाते-रिश्तेदार यार दोस्त यहाँ तक के अपना देश छोड़कर आए बुज़ुर्ग माता-पिता खुद को यहाँ कितना अकेला और असहज महसूस करते है, यह यहाँ उनके चेहरा देखकर ही समझ आ जाता है। उनकी बेबसी और उनकी मजबूरी उनके चेहरे से साफ झलकती है। मगर नाती पोतों के साथ रहने का मोह ही शायद उन्हें यहाँ रहने के लिए बांधे रखता होगा। क्योंकि यहाँ अधिकांश लोग अपने माता-पिता को बुलाते ही इसलिए हैं कि वह दोनों जब नौकरी करने बाहर जाएँगे या पार्टी करने बाहर जाएँ तब घर में उनकी गैरमौजूदगी में उनके बच्चों को संभालने के लिए कोई तो चाहिए और यह काम दादा-दादी या नाना-नानी से बेहतर और कौन कर सकता है। वह तो पैसे भी नहीं लेंगे और खुशी-खुश यह काम करेंगे क्योंकि वह कहते हैं न 'असल से सूद प्यार होता है' और इसी बात का फायदा

> लोग तो पराये शहर में ज्यादा दिन नहीं रह पाते, फिर चाहे उन्हें वहाँ कितने भी ऐश और आराम की ज़िंदगी क्यूँ न मिल रही हो। तो फिर ज़रा सोचिए हमारे उन भारतीय बुज़ुर्गों के दिल पर क्या गुज़रती होगी, जो अपना सब कुछ छोड़कर विदेश आ बसे हैं जहां की न बोली अपनी है न लोग।

उठाती है आज की पीढ़ी और नाम यह कि हमारी तो नौकरी के चलते मजबूरी है कि हम वहाँ रह नहीं सकते और उनकी देख भाल करने वाला वहाँ कोई है नहीं इसलिए हम ने उन्हें यहाँ बुला लिया।

लेकिन न जाने क्यूँ लोग यह भूल जाते हैं कि हमारे बुज़ुर्ग एक पुराने पेड़ की तरह होते हैं। यदि किसी पुराने पेड़ को उसकी जड़ों से उखाड़ कर कहीं और की मिट्टी में लगाने की कोशिश करोगे तो वह पेड़ मुरझा जाएगा और यही होता है यहाँ हमारे भारतीय परिवारों के बुज़ुर्गों के साथ, न वह पूरी तरह यहाँ के ही होते पाते हैं और ना ही वह वहाँ के रह पाते हैं। जहां से वह आए हैं वहाँ उनका अपने हम उम्र दोस्तों के साथ रोज़ का उठना-बैठना, घूमना-फिरना, मंदिर जाना अपनी दुःख-सुख, परेशानियाँ, अपनी खुशियाँ बांटने का जो मज़ा जो सुकून उन्हें अब तक वहाँ मिल रहा था। वह सुख यहाँ आते ही उन से छिन जाता है। रह जाती हैं केवल जिम्मेदारी, जिसे वह अपने बच्चों की शादी करने के बाद यह सोचकर चलने लगते हैं कि अब उनकी सारी ज़िम्मेदारियाँ समाप्त हुई। मगर वह यह नहीं जानते कि उनकी ज़िम्मेदारियाँ अब समाप्त नहीं बल्कि अब शुरू हुई हैं। जिन नाती पोतों के सुख के लिए वह अपने बच्चों की शादियाँ इतनी धूमधाम से करते हैं आगे चलकर उन्हीं नाती-पोतों के नौकरों की तरह उन्हें उनके ही घर से उनकी ही जमीन से उनके ही देश से अलग करके एक अलग ही माहौल में रहने को मजबूर कर दिया जाता है जहां वह न सिर्फ रहन-सहन बल्कि भाषा और बोली के कारण भी खुद को बहुत असहज महसूस करते रहते हैं। मगर कह कुछ नहीं पाते और कहें भी तो किस से और क्या क्योंकि यहाँ तो सभी पराये हैं।

माना कि इंसान का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जहां रहने लगते हैं एक न एक दिन मन वहाँ लग ही जाता है फिर चाहे राज़ी खुशी से लगे या समझौता करना पड़े। लेकिन समझौते के आधार पर भला कोई भी इंसान अपनी ज़िंदगी जी कैसे सकता हैं, वह तो केवल अपनी ज़िंदगी गुज़ारता है मगर जीता नहीं क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और केवल अपने समाज में ही अपने अपनों के बीच रहकर ही वह अपना जीवन जी सकता है अर्थात जिसे ज़िंदगी जीना कहते है वैसी ज़िंदगी जी सकता है अन्यथा ज़िंदगी गुज़ार तो सभी लेते हैं।

लोग तो पराये शहर में ज्यादा दिन नहीं रह पाते, फिर चाहे उन्हें वहाँ कितने भी ऐश और आराम की ज़िंदगी क्यूँ न मिल रही हो। कुछ समय बाद घर की याद सभी को सताने ही लगती है। तो फिर ज़रा सोचिए हमारे उन भारतीय बुज़ुर्गों के दिल पर क्या गुज़रती होगी, जो अपना सब कुछ छोड़कर यहाँ अर्थात विदेश आ बसे हैं जहां की न बोली अपनी है न लोग। ऐसे में यदि जरूरत पड़ने पर कभी कोई सहायता भी लेनी हो तो वह बेचारे खुलकर कह भी नहीं पाते।

यूँ देखा जाये तो यहाँ के लोग अपने भारत के लोगों की तुलना में ज्यादा सभ्य और मददगार है लेकिन वह मदद या सहायता तभी करेंगे न जब उनसे कोई कुछ बोलेगा और वह समझेंगे, लेकिन कहीं न कहीं एक झिझक शायद ठीक तरह से अँग्रेज़ी न बोल पाने के कारण या फिर खुद को अलग-सा महसूस करने के कारण उनके मन में हमेशा एक झिझक सी बनी रहती है जिसके चलते वह किसी विदेशी से ज्यादा कुछ बात भी नहीं करते फिर चाहे उन्हें किसी समस्या के समाधान के लिए अकेले ही बहुत देर तक परेशान ही क्यूँ न होना पड़े। जैसे कई बार मैंने खुद ऐसा देखा है कि बस का नंबर भूल जाने पर लोग परेशान दिखाई देते हैं यहाँ वहाँ घूम-घूम कर सभी बोर्ड पढ़ते हैं साफ दिखाई भी नहीं देता उनको फिर भी कोशिश करते हैं किसी तरह बिना किसी की मदद लिए वह अपनी समस्या का समाधान खुद ही ढूंढ लें।

ऐसे हालातों में कई बार तो उन्हें देखकर ऐसा महसूस होता है कि काश हम उनकी सहायता करके उन्हें उनके घर तक पहुँचा पाते तो कितना अच्छा होता है। वैसे तो लंदन में आज की तारीख़ में इतने भारतीय परिवार हैं जितने कि आप सोच भी नहीं सकते। कई जगह तो ऐसा महसूस भी नहीं होता हैं कि हम हिंदुस्तान से बाहर है लेकिन फिर भी यहाँ छह साल गुजारने के बाद भी मुझे अपने वतन की कमी इतनी अधिक महसूस होती है तो उन्हें कैसा लगता होगा। यह सब देखकर मेरी समझ तो यही कहती है। हमारे बुज़ुर्ग हमारे घरों की शान है, मान है, सम्मान है। आज उन्हीं की दी हुई परवरिश के बल पर, उनके जीवन संघर्ष और त्याग के बल पर हम इस काबिल बन पाये हैं कि विदेश आ पाये। अब हमारी बारी है कि हम उन्हें वह सब दें जिसके वह अधिकारी हैं।

हमें उनका वह अधिकार उन्हें पूरे मान सम्मान के साथ देना चाहिए न कि यूँ उन्हें उनकी मिट्टी से दूर करके खुद अपनी ज़िम्मेदारियों से मुँह फेर लेना चाहिए और यदि हम ऐसा कर रहे हैं तो आने वाले समय में हमें खुद भी उस सम्मान की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि कबीर दास जी ने कहा है 'बोए पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से खाये' अर्थात जैसे व्यवहार हम अपने बुज़ुर्गों के साथ करेंगे वैसा ही हमारे बच्चे भी हमारे साथ बरताव करेंगे।■

आत्माराम शर्मा

२६ फरवरी १९६८ को ग्राम खरगापुर, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में जन्म. हिन्दी साहित्य में एम.ए. और एम.सी.ए. की उपाधि. नईदुनिया समाचार-पत्र में कला-समीक्षक के तौर पर लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताओं का प्रकाशन. 'गर्भनाल पत्रिका' के संस्थापक सदस्य एवं पूर्व-सम्पादक. सम्प्रति : जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश के सृजनात्मक उपक्रम 'मध्यप्रदेश माध्यम' में उप प्रबन्धक.

सम्पर्क : डीएक्सई-२३, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.). ईमेल : atmaram.sharma@gmail.com

बातचीत

हिन्दी-प्रेमी इंदिरा गाजीएवा से आत्माराम शर्मा की बातचीत

आत्माराम शर्मा : अपने बचपन, परिवार और हिन्दुस्तान से जुड़ाव की यादें साझा करना चाहेंगी।

इंदिरा गाजीएवा : मेरा जन्म उज़बेकिस्तान के ताशकन्द नगर में हुआ। इन्दिरा नाम मेरे माता-पिता ने हिन्दुस्तान की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के सम्मान में दिया था। भूतपूर्व सोवियत संघ के लोगों में श्रीमती गांधी बहुत लोकप्रिय थीं और ज़्यादातर लोग अपनी बेटियों का नाम इन्दिरा रख देते थे। इन्दिरा जी ने अनेकों बार ताशकन्द की यात्रा की थी। मेरे माता- पिता ताशकन्द विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पढ़ाते थे। जब मेरी आयु तीन बरस की थी तो प्रतिनियुक्ति पर मेरे माता-पिता भारत आ गये। हम सपरिवार महाराष्ट्र प्रदेश के पोवाई नगर में रहे। मेरे माँ-पिता पोवाई विश्वविद्यालय में रूसी भाषा पढ़ाते थे। उस वक्त पोवाई नगर में मशहूर फ़िल्म डायरेक्टर राज कपूर ने अपनी फ़िल्म 'मेरा नाम जोकर' बनायी थी। फ़िल्म के दृश्यों के अनुसार रूसी कलाकारों को भारत में आना होता था। वहां मेरे पिताजी दुभाषिये का काम करते थे। सो मेरे माँ-बाप को फ़िल्म बनाते समय राज कपूर साहब से मिलने और बात करने का मौका मिला।

यहाँ एक बात और कहना चाहती हूँ कि उस दौर में ताशकन्द शहर में कई साल के दौरान अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह आयोजित किये गये जिनमें भारतीय डाइरेक्टर, अभिनेता और अभिनेत्रियां अपनी फ़िल्में प्रस्तुत किया करते थे। सोवियत लोगों में ऐसे फ़िल्म समारोह बहुत विख्यात होते थे। हमारा परिवार भारत में चार साल रहकर उज़बेकिस्तान वापस आ गया। मैंने हिंदी भाषा ताशकन्द विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग में सीखी। मेरे हिंदी अध्यापकों में महत्वपूर्ण थे प्रो. आज़ाद शामातोव (हिंदी एतिहास तथा व्याकरण), डॉ. ज़ारिफ़ा बेगीज़ोवा (हिंदी भाषा), डॉ. तमारा खोजाएवा (हिंदी साहित्य), डॉ. शीरिन जलीलोवा (हिंदी शब्द विचार), डॉ. रेना आउलोवा (हिंदी भाषा), डॉ. रानो गुल्यामोवा (भारतीय गद्य तथा पद्य), डॉ. राहमानबेर्दी मुखामेजानोव (उर्दू शायरी), डॉ. वेरा मुखामेजानोव (उर्दू ज़बान), डॉ. ओल्गा पोलिनोवा (हिंदी साहित्य)। मैं उसी समय हिंदी अध्यापन से जुड़ गयी। दो वर्ष विश्वविद्यालय के भारतीय विभाग में काम करने के बाद मैं संस्कृत सीखने मास्को विश्वविद्यालय आई। सन् १९९४ से २००० तक मैंने मास्को विश्वविद्यालय में एशिया और अफ्रीका संस्थान के भारतीय विभाग में हिंदी पढ़ायी। फिर २००० से मैं रूसी राजकीय

इंदिरा गाजीएवा

उज़बेकिस्तान के ताशकन्द शहर में जन्म। तीन साल की उम्र में माता-पिता के साथ पोवाई विश्वविद्यालय, मुंबई आ गईं, जहाँ वे रूसी भाषा पढ़ाते थे। सन् १९७९-८४ में ताशकन्द विश्वविद्यालय के पूर्वी विभाग से एम.ए. एवं १९८५-८८ में संस्कृत अनुसंधान कार्य किया। १९९४-२००० में मास्को विश्वविद्यालय में हिन्दी की अध्यापिका रहीं। २००१ से २००३ तक मास्को १९वीं बोर्डिंग स्कूल में भी हिन्दी पढ़ाई। हिन्दी पढ़ाने के दौरान रूसी भाषा में कई पाठ्य-पुस्तकें एवं व्याकरण की पुस्तकें लिखीं। दो साल पहले दर्शनशास्त्र विश्वविद्यालय में पूर्वी विभाग खोला गया जहां रूसी छात्र हिन्दी, संस्कृत, दर्शनशास्त्र आदि विषय सीखते हैं।

सम्प्रति : रूस राजकीय मानविकी विवि की हिन्दी अध्यापिका।

सम्पर्क : http://hindi-lesson.livejournal.com

http://vk.com/hindi.india

भारतीय भाषाओं का और ज़्यादा प्रचार-प्रसार बेहद ज़रूरी है

प्रो. नीलम सक्सेना एवं इंदिरा गाजीएवा (बायें से चौथी एवं पांचवीं) के साथ हिन्दी सीखने वाले छात्र-छात्राएँ।

> मेरे विद्यार्थियों को हिंदी, भारतीय साहित्य, इतिहास तथा संस्कृति बहुत अच्छे लगते हैं। हमारी पढ़ाई कंप्यूटर क्लास में होती हैं जहां हम लोग हिंदी सीखने में कंप्यूटर और टेलीकम्म्युनिकेशन्स सिस्टम उपयोग करते हैं।

मानविकी विश्वविद्यालय में काम करने लगी और बाद में बी.ए. के छात्रों को हिंदी भाषा तथा व्याकरण पढ़ाने लगी। मैंने हिंदी पढ़ाने के दौरान रूसी भाषा में कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। दो साल पहले दर्शनशास्त्र विश्वविद्यालय में पूर्वी विभाग खोला गया जहां रूसी छात्र हिन्दी, संस्कृत, दर्शनशास्त्र आदि विषय सीखते हैं। मैं इस विश्वविद्यालय में भी हिन्दी भाषा पढ़ा रही हूँ।

रूस के युवा भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के बारे में किस तरह की जिज्ञासा रखते हैं?

मेरे छः विद्यार्थी हैं। उनको हिंदी, भारतीय साहित्य, इतिहास तथा संस्कृति बहुत अच्छे लगते हैं। हमारी पढ़ाई कंप्यूटर क्लास में होती हैं जहां हम लोग हिंदी सीखने में कंप्यूटर और टेलीकम्म्युनिकेशन्स सिस्टम उपयोग करते हैं। इसके अलावा विद्यार्थी आधुनिक भारतीय लेखकों की रचनाएँ बड़ी उत्सुक्ता से अनुवाद करते हैं।

रूसी युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के बारे में कुछ न कुछ जानकारी रखती हैं। रसिया में जवान लोग अनेक वेबसाइटों में शौक रखे हुए हैं जैसे http://vk.com/groups : Hindi India, MoiHindi, LazyHindi,

Facebook : Hindi PU, gadyakosh, ApniHindi, Hind Yugm Prakashan, www.india.ru, http://www.moihindiguru. blogspot.ru/, hindi-lesson. livejournal.com, http://hindivishwa.org/, Hindi: जय हो हिन्दी, http://www.hindi-bharat.com आदि। इसके अतिरिक्त रसिया में एक टीवी चैनल http://indiatv.ru है जिसमें रूसी लोग भारतीय संस्कृति और फिल्मों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

मास्को विश्वविद्यालय के भाषा विभाग के बारे में बतायें। वहां एशियाई भाषाओं में हिन्दी आदि की क्या दशा है।

जैसा कि मैंने बताया कि मैं १९९४ से २००० तक मास्को विश्वविद्यालय में एशियाई और अफ्रीका देशों के संस्थान में भारतीय विभाग में हिंदी पढ़ाती थी। उस समय वहां न केवल हिंदी-उर्दू बल्कि बांग्ला और तमिल भाषाएँ भी पढ़ाई जाती थीं। लेकिन कहना चाहती हूँ कि भूतपूर्व सोवियत संघ के समय की तुलना में एशियाई भाषाओं के अध्ययन में आज की स्थिति अच्छी नहीं है। भारतीय विभाग के अध्यक्ष अभिज्ञात प्रोफ़ेसर बोरिस ज़ाखारीन हैं। वे न केवल हिंदी, बल्कि संस्कृत भाषाएँ पढ़ाते हैं। पहले उन्होंने कश्मीरी भाषा भी पढ़ायी थी और उन्होंने हिंदी व्याकरण के इतिहास की किताब, कश्मीरी भाषा की पाठ्य-पुस्तक, संस्कृत भाषा के कई संदर्भ ग्रंथ लिखे हैं। इन दिनों डॉ. ल्यूदमिला ख़ोख़लोवा हिंदी पढ़ाती हैं। पहले वे पंजाबी भाषा भी पढ़ाती थी। उन्होंने इस भाषा की पाठ्य-पुस्तक भी लिखी। उर्दू भाषा की शिक्षिका पहले डॉ. गालीना दाशेनको और डॉ. मरीना मीखायलोना थीं। डॉ. गालीना दाशेनको की उर्दू भाषा की पाठ्य-पुस्तक से

इंदिरा गाजीएवा (बायें से पहली) एवं डॉ. गुलाब सिंह (बायें से चौथे) के साथ हिन्दी सीखने वाली छात्राएँ।

रूसी छात्र अभी भी उर्दू सीख रहे हैं। आज उर्दू भाषा, व्याकरण व साहित्य डॉ. एकातेरीना अकीमुशकिना पढ़ाती हैं। तमिल भाषा व साहित्य के अध्यापक डॉ. अलेक्ज़ान्दर दुब्यान्स्कीय हैं। पहले इस विभाग में बांग्ला भाषा भी पढ़ाई जाती थी। डॉ. एलेना अलेक्सेएवा ने बांग्ला भाषा की पाठ्य-पुस्तक लिखी थी। आज बांग्ला भाषा और साहित्य केवल मास्को के अंतर्राष्ट्रीय कूटनीतिक संबंधों के विश्वविद्यालय में डॉ. इरीना प्रोकोफ़्येवा सिखाती हैं।

आधुनिक दौर में रूसी साहित्य से हिन्दी में अनुवाद की क्या स्थिति है।

मुझे नहीं लगता कि आजकल रूसी साहित्य से हिन्दी में अनुवाद किया जा रहा है। कभी कभार कोई अज्ञात तौर पर हिंदी में अनुवाद कर रहा हो तो अलग बात है। हम अध्यापक लोग ज़रूर पढ़ाते समय अपने छात्रों के लिये प्रसिद्ध रूसी कवियों की कुछ कविताएँ और अन्य रचनाओं का हिंदी में अनुवाद कर रहे हैं जैसे आलेक्ज़ान्दर पुश्किन की छोटी कविताएँ। लेकिन ऐसे अनुवाद प्रकाशन के लिए नहीं बस पढ़ाने के लिए किये जाते हैं। मुझे मालूम है कि भारतीय लोगों ने रूसी साहित्य से हिन्दी में अनेक अनुवाद किये हैं जैसे प्रो. हेमचंद्र पांडे जो जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में पहले रूसी भाषा तथा व्याकरण पढ़ाते थे और अभी वे सेवामुक्त हो गए हैं, ने रूसी लेखकों जैसे वालेन्टीन रास्पूटिन और विक्टोरिया तोकारेवा की कुछ रचनाओं को हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित किया था। चंडीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय के रूसी विभाग के अध्यक्ष डॉ. पंकज मालवीय रूसी साहित्य से हिन्दी में अनेक अनुवाद कर रहे हैं। मुम्बई विश्वविद्यालय के रूसी विभाग के अध्यक्ष प्रो. लक्ष्मी मिकाएलियान ने अपने छात्रों से आधुनिक रूसी साहित्य की कुछ कहानियाँ मराठी व हिन्दी में अनुवाद करायी हैं। रूस रेडियो संस्थान के आधुनिक भारतीय कवि अनिल जनविजय ने अपनी वेबसाइट बनायी है www.kavitakosh.org, यह वेबसाइट रूसी तथा भारतीय लेखकों या कवियों की हिन्दी-रूसी और रूसी-हिन्दी की अनूदित रचनाओं और मौलिक कविताओं का बड़ा संग्रह है। इस वेबसाइट में इंटरनेट पर उपलब्ध भारतीय काव्य का सबसे बड़ा और सुव्यवस्थित कोश प्रस्तुत है। इसमें न केवल हिन्दी और उर्दू बल्कि बहुत-सी हिंदी की बोलियों में रचा गया काव्य उपलब्ध है।

> *दुनिया के लगभग ८० देशों में हिंदुस्तानी बसे हुए हैं और इनकी नयी पीढ़ी अपनी भाषा एवं रिवाज, संस्कृति एवं खानपान को लगातार भूलती जा रही है। हमें रवींद्रनाथ ठाकुर के विचार 'हिन्दी महानदी है और भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं' को याद रखना है।*

भारत में हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाएँ लगातार हाशिये पर धकेली जा रही है। ऐसे में देश एवं विदेश में आयोजित होने वाले हिन्दी सम्मेलनों की उपयोगिता को आप किस नजर से देखती हैं।

मेरे ख़्याल में बहुत अच्छी बात है कि भारत में या विदेशों में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इनसे कुछ न कुछ फ़ायदा होता है और भविष्य में होगा। भारतीय सरकार को हिंदी के विकास के प्रयास करना चाहिए क्योंकि दुनिया के लगभग ८० देशों में हिंदुस्तानी बसे हुए हैं और इनकी नयी पीढ़ी अपनी भाषा एवं रिवाज, संस्कृति एवं खानपान को लगातार भूलती जा रही है। हमें रवींद्रनाथ ठाकुर के विचार 'हिन्दी महानदी है और भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं' को याद रखना है। इसलिए हिन्दी और भारतीय भाषाओं का और ज़्यादा प्रचार-प्रसार बेहद ज़रूरी है। हिन्दी सम्मेलनों में संसार भर के विद्वान अपने

बहुमूल्य विचार आदान-प्रदान करते हैं। उनसे लाभ अवश्य होता है।

देश भर के हिन्दी अखबारों में हिन्दी को हिंग्लिश के तौर पर स्थापित करने की होड़-सी लगी हुई है। क्या आपको नहीं लगता कि बीस-तीस सालों में हिन्दी का स्वरूप घर के भीतर बोली जाने वाली बोली का बन जायेगा।

नहीं। यह कभी नहीं होगा क्योंकि हिन्दी साहित्यकार अपनी हिन्दी भाषा को साहित्यिक रूप में प्रसार कर रहे हैं। हिंग्लिश आम तौर पर मौखिक रूप में प्रचालित है। विदेशियों को जब वे हिन्दी सिखाना शुरू करते हैं तो उनसे हिंग्लिश में बात करना ज़्यादा आसान है। और जल्दी बोलना उनका पहला उद्देश्य है। मगर जब बाद में वे लोग हिन्दी साहित्य पढ़ना चाहते हैं तो देखते हैं कि हिन्दी और हिंग्लिश में अंतर क्या होता है। हाल ही में रूसी भाषा में बहुत से अंग्रेज़ी शब्द आ गए हैं और मौखिक रूप में हम लोग रूसी को रूस्लिश कहते हैं पर रूसी साहित्य क्लासिक साहित्यिक रूप में लिखा गया था। इसलिए डरने की ज़रूरत नहीं है।

साहित्य की कौन-सी विधा आपको सबसे ज्यादा प्रिय है। इसके अलावा क्या आधुनिक हिन्दी साहित्य में वर्तमान समय-समाज का अंकन हो पा रहा है?

साहित्य में हमें कहानियाँ तथा कविताएँ ज्यादा प्रिय लगती हैं। बड़े उपन्यास पढ़ने के लिये पाठकों के पास कम समय होता है। हमारे विश्वविद्यालय में हिंदी के चार वर्षों के पाठ्यक्रम में छात्र साहित्यिक भाषा तथा बोलचाल की भाषा दोनों सीख लेते हैं। फ़ेसबुक के जरिये हम लोगों ने पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. सत्यपाल सहगल से और इनके छात्रों से मित्रता बना ली है। उनकी वेबसाइट में आधुनिक लेखकों, कवियों-कवयित्रियों की बहुत-सी रचनाएँ मिल जाती हैं जिनको रूसी छात्र बड़ी रुचि से अनुवाद करते हैं। यह बहुत ही सुखद है।

> *हाल ही में रूसी भाषा में बहुत से अंग्रेज़ी शब्द आ गए हैं और मौखिक रूप में हम लोग रूसी को रूस्लिश कहते हैं पर रूसी साहित्य क्लासिक साहित्यिक रूप में लिखा गया था। इसलिए डरने की ज़रूरत नहीं है।*

साहित्य के जरिये समाज कैसे आन्दोलित होता है, एकाध उदाहरण बता सकेंगी।

रूसियों को भारतीय साहित्य बड़ा प्रभावित करता है क्योंकि इसके जरिये सामाजिक जीवन के अत्यावश्यक मामलों को उठाया जाता है जैसे- वर्णभेद, गरीबी, भ्रष्टाचार, अपराध, महिलाओं की स्थिति, बेरोज़गारी, जाति-द्वेष आदि। अप्रत्यक्ष तौर पर यह काम साहित्य ही तो करता है।

विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य के बारे में एक राय यह बनती है कि यह नॉस्टेल्जिया का साहित्य है आप क्या कहेंगी।

यह बात सही है कि यह नॉस्टेल्जिया का साहित्य है। मैं पूरी तरह सहमत हूँ। भूतपूर्व सोवियत संघ में अनेक भारतीय लेखकों तथा महाकवियों की रचनाएँ-कविताएँ रूसी में अनुवाद की जाती रही थीं जैसे प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, वृंदावनलाल वर्मा, कृश्न चंदर, भीष्म साहनी, यशपाल, जयशंकर प्रसाद, अमृता-प्रीतम, हरिवंशराय बच्चन, अज्ञेय, अशोक वाजपेयी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा आदि। इनके अलावा हिंदी के अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी के कवियों की रचनाओं के अनुवाद भी रूसी में प्रकाशित किए गये थे, जैसे विश्वनाथप्रसाद सिंह, गोरख पांडेय, मंगलेश डबराल, उदयप्रकाश, नरेंद्र जैन, अरुण कमल, अनिल जनविजय, गगन गिल और स्वप्निल श्रीवास्तव आदि। रूसी संस्कृति तथा विज्ञान अकादमी में एक बड़ा साहित्य विभाग था जिसमें रूस के प्रमुख विद्वानों ने भारतीय एवं हिन्दी साहित्य पर अनुसंधान किए थे। उनमें से प्रोफ़ेसर येव्गेनी चेलिशेव, प्रोफ़ेसर अलेक्सांद्र सेंकेविच, प्रोफ़ेसर अन्ना सुवोरोवा, प्रोफ़ेसर ल्युदमीला वासिल्येवा, प्रोफ़ेसर नाताल्या प्रिगारीना, प्रोफ़ेसर नाताल्या साज़ानोवा के नाम गिनाए जा सकते हैं। इन्होंने हिंदी और भारतीय साहित्य के बारे में बहुत-कुछ लिखा है। प्रोफ़ेसर गूज़ेल स्त्रेलकोवा ने हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, महाश्वेता देवी की कहानियों का रूसी भाषा में अनुवाद किया ताकि रूसी विद्यार्थी भारतीय साहित्य से परिचित हो सकें। हम हिंदी शिक्षकों ने अध्यापन के दौरान की कहानियों का भी अनुवाद करने की आदत विकसित की है। आजकल रूस में हिंदी भाषा और साहित्य की पढ़ाई सिर्फ़ छः विश्वविद्यालयों में हो रही है। चार मास्को में हैं, एक व्लादिवोस्तोक में (सुदूर-पूर्व विश्वविद्यालय में) और एक सेंट-पीटर्सबर्ग के राजकीय विश्वविद्यालय में है। इसके अतिरिक्त मास्को में एक बोर्डिंग-स्कूल है जहाँ पचपन साल से ज़्यादा समय से हिंदी पढ़ाई जा रही है। कुल मिलाकर रूस में हिंदी शिक्षण सरकारी एवं निजी संस्थानों में तथा आनलाइन और निजी स्तर पर भी हो रहा है। यहां हिंदी साहित्य की कुछ कहानियों एवं कविताओं का अनुवाद किया जाता है।

> रसिया की युवा पीढ़ी रूसी साहित्य कम पढ़ती है। ऐसी हालत न केवल मेरे विद्यार्थियों की है जो हिन्दी सीख रहे हैं, बल्कि पूरे रूस में ऐसा ही हाल है। रूसी युवा पीढ़ी रूसी साहित्य भूलती जा रही है।

आपकी निगाह में लेखक एक आम आदमी से किस प्रकार भिन्न होता है।

मेरी निगाह में लेखक आम आदमी से अलग होता है क्योंकि कवि या लेखक को अपनी रचनाओं में जीवन की ठोस वास्तविकता प्रदर्शित करने की कोई मजबूरी नहीं है इसलिए वह जीवन में हर वस्तु, हर व्यक्ति, हर घटना पर बिलकुल दूसरी तरफ़ से देखता है। कल्पना के सहारे बयान कर सकता है। किताब या ग्रंथ लिखने में उसको अपना पेशा दिखाता है। यह उसकी नौकरी है।

हिन्दी के अपने प्रिय साहित्यकारों में कुछ के नाम बताना चाहेंगी।

मुझे और मेरे छात्रों के प्रिय साहित्यकार हैं मुंशी प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, कृश्न चंदर, भीष्म सहनी, यशपाल, जयशंकर प्रसाद, अमृता प्रीतम, हरिवंशराय बच्चन और महाश्वेता देवी।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के भविष्य को आप किस नज़र से देखती हैं।

मेरे ख़्याल में भविष्य में हिन्दी का महत्व साल-दर-साल बढ़ता रहेगा। हिंदी की विजय होगी।

वर्तमान समय में युवा वर्ग साहित्य से दूर होता जा रहा है, आप क्या कहेंगी।

रसिया की युवा पीढ़ी रूसी साहित्य कम पढ़ती है। ऐसी हालत न केवल मेरे विद्यार्थियों की है जो हिन्दी सीख रहे हैं, बल्कि पूरे रूस में ऐसा ही हाल है। रूसी युवा पीढ़ी रूसी साहित्य भूलती जा रही है। जब २००७ में रसिया में एकीकृत राजकीय परीक्षा आयोजित की गयी थी तो उस वक्त से रूसी युवा साहित्य के संक्षिप्त रूप को जानना चाहते हैं क्योंकि परीक्षा पास करने के लिए ज़्यादा समय लगता है। इंटरनेट में हर तरह की सूचनाएँ आती हैं। उनको जल्दी अनुभव करना बहुत कठिन होता है। आठों पहर कम्प्यूटर पर बैठना असंभव है। दूसरे छपी हुई किताबों का दाम बहुत-ज़्यादा होता है। लोग किताबें कम खरीदते हैं इंटरनेट से डाउनलोड करने की कोशिश करते हैं। पुस्तकालय में जवान लोग भी मिलते हैं और वे बहुविध रचनाएँ पढ़ते हैं। मेरे छात्र जासूसी कहानी या विज्ञान कथा या नए फ़ैशन के लेखकों की रचनाएँ पढ़ना पसंद करते हैं जो साहित्यिक भाषा में नहीं लिखी हुई हैं, सिर्फ़ मौखिक भाषा में या 'स्लैंग' में। और आजकल हम यह चित्र देख सकते हैं कि जवान लोग अपने मोबाइल फ़ोन में क्या-क्या पढ़ते हैं मुझे आशा है कि वे कभी-कभी साहित्य के कुछ न कुछ गद्य या पद्य भी पढ़ते होंगे।

हिन्दी के नाम पर प्रायोजित पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं की भरमार है, क्या इससे साहित्य लेखन के स्तर में इजाफा हुआ है या फिर स्तर में गिरावट आई है।

इस सवाल का जवाब देना कठिन है। मैं आशा कर सकती हूं कि साहित्य लेखन के स्तर में इजाफा ही हुआ होगा, गिरावट नहीं आई होगी।

हिन्दी का साहित्य अब भी पाठक खरीदकर पढ़ने की बजाय माँगकर या पुस्तकालय के मार्फत पढ़ता है। आपका अनुभव क्या है।

इंटरनेट, कम्प्यूटर, एलेक्ट्रॉनिक किताबों के सिवा पुस्तकालय बहुत ज़रूरी है। अगर बिजली नहीं मिलती तो दुनियाभर क्या करे सोचना भी भयानक है। मेरी राय यह है कि ज़्यादा पुस्तकालय बनाने चाहिए तब तो पाठकों की संख्या बढ़ेगी।

दक्षिण अफ्रीका में सम्पन्न विश्व हिन्दी सम्मेलन में शामिल विदेशी मूल के हिन्दी प्रेमियों के बारे में कुछ कहना चाहेंगी।

विश्व हिन्दी सम्मेलन में शामिल हुए विख्यात लोगों में से मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रो. आर.एस सराजु से परिचित हूं, जो २००५ से २००७ तक रूस में भारतीय दूतावास के जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र में काम करते थे और हर सप्ताह मेरे विश्वविद्यालय में आकर रूसी छात्रों से हिंदी में बात किया करते थे। अन्य शामिल हुए प्रतिनिधियों में से जापान से आए हुए प्रो. हिदेआकी इशिदा को, अमेरिका से प्रो. हर्मन वैन ऑल्फ़न से मेरा परिचय है। बुल्गारिया से प्रो. गण्चेवा वन्या जोर्ज्येवा को मैं ख़ुद नहीं जानती मगर उनके बारे में बहुत सुना और मिलने की मेरी बड़ी इच्छा है। विश्व हिन्दी सम्मेलन में रशिया की तरफ़ से महामहिम प्रो. सेर्गेय सेरेब्रियनी शामिल हुए थे। वे प्रतिष्ठित विद्वान हैं और हिंदी अच्छी तरह बोल लेते हैं। उन्होंने मुझे सम्मेलन के कार्यक्रम एवं प्रस्ताव दिखाये तथा अपना अनुभव बताए।

फादर कामिल बुल्के के अलावा दुनियाभर में फैले विदेशी मूल के कितने हिन्दी प्रेमियों को आप जानती हैं।

फादर कामिल बुल्के बहुत सम्मानित एवं आला दर्जे के हिन्दी प्रेमी विद्वान थे। उनके हिन्दी के निबन्ध एवं लेख मेरे छात्रों को अभी भी बहुत लाभ देते हैं। इसके अलावा बीबीसी के जाने-माने पत्रकार मार्क टली को भी मैं जानती हूं। उनके लेख भी मेरे छात्र पसंद करते हैं।■

Who Are You Calling Old?

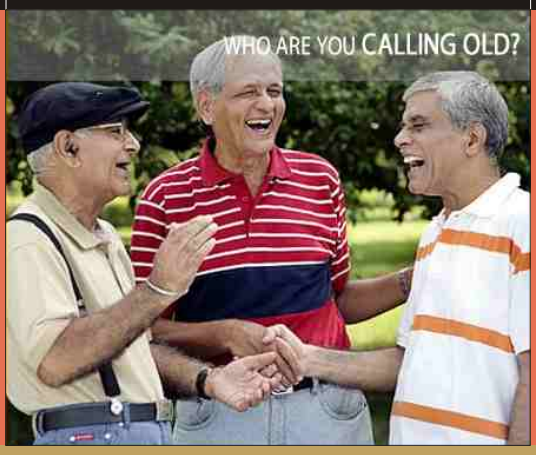

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स मे वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

नजरिया

सह-जीवन के बावजूद

जिस पर कोई भी फिदा हो जाए, वह एक ऐसी ही बहुत ही आकर्षक और समझदार लड़की है। वह जब बोलती है, तो जैसे फूल झरते हैं। उसकी संवेदनशीलता और त्वरित बुद्धि का तो कहना ही क्या। जिस चीज को समझने में मुझे एक घंटा लगता है, उसे वह मिनटों में ताड़ लेती है। विनम्रता और स्वाभिमान का ऐसा संगम कम ही देखने को मिलता है। ऐसे व्यक्ति में अगर विनोद वृत्ति (विट) भी हो, तो कहना चाहिए कि सोने में सोहागा मुहावरा ऐसे ही अवसरों के लिए बना है। उसकी सुंदरता की प्रशंसा नहीं करूँगा। एक दिन उसने खुद ही कहा था कि अगर कोई सुंदर है तो इसमें उसका अपना योगदान क्या है? जो चीज भगवान की दी हुई है, उस पर आदमी क्यों गर्व करे?

एक दिन मुझे पता चला कि वह कई वर्षों से एक पत्रकार युवक के साथ लिव-इन में रह रही है। पहले दोनों एक ही विश्वविद्यालय में साथ-साथ पढ़ते थे। परिचय का स्थान प्रेम ने ले लिया और जरूरत महसूस हुई तो दोनों एक साथ रहने लगे। उस लड़की के व्यक्तित्व को देखते हुए मुझे इसकी उम्मीद कतई नहीं थी। मैं समझता था कि वह उसी वर्ग की लड़की है जिसे 'संस्कारशील' कहते हैं। इस वर्ग की लड़की से उम्मीद की जाती है कि वह पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद, नौकरी-चाकरी, सभी में आगे रहेगी, पर कोई एडवेंचर नहीं करेगी, हमेशा मर्यादा में रहेगी और माँ-बाप की प्रत्येक आज्ञा का पालन करेगी। बेशक वह अपने माता-पिता-भाई को हद से ज्यादा प्यार करती है और उनके लिए कोई भी कुरबानी करने के लिए खुशी-खुशी तैयार रहती है, बल्कि उसका अवसर खोजती रहती है, किंतु वह उनके मत की गुलाम नहीं है।

> *एक दिन मुझे पता चला कि वह कई वर्षों से एक पत्रकार युवक के साथ लिव-इन में रह रही है। पहले दोनों एक ही विश्वविद्यालय में साथ-साथ पढ़ते थे। परिचय का स्थान प्रेम ने ले लिया और जरूरत महसूस हुई तो दोनों एक साथ रहने लगे।*

एक दिन मैंने उससे पूछा, 'सह-जीवन का तुम्हारा अनुभव क्या है? क्या यह वास्तव में सह-जीवन होता है?'

उसके जवाब में ईमानदारी खनक रही थी, 'बस ऐसे ही है। व्यवहार में यह शादी के बराबर ही है।'

मैंने जानना चाहा, 'यानी शादी में स्त्री-पुरुष की जैसी सापेक्षित स्थिति होती है, वैसी ही?'

इस बार भी सत्य ही बाहर आया, 'बिलकुल वैसी ही। सह-जीवन में भी स्त्री की भूमिका वैसी ही होती है जैसे विवाह में। हर बात में समझौता उसे ही करना होता है। पुरुष राज करता है।'

यह मेरे लिए एक नई बात थी। मैं समझता था कि सह-जीवन दोनों पक्षों को स्वतंत्रता और समानता देता है। वह उन्हें स्त्री-पुरुष की परंपरागत भूमिकाओं से बाहर ले आता है और प्रेम तथा सम्मानजनक जीवन बिताने का अवसर देता है। वह एक तरह की असुरक्षा से मुक्त कर दूसरी तरह की असुरक्षा नहीं भरता। लेकिन हाल में इस सहित अनेक ऐसे अनुभवों के बारे में जानने को मिला कि सह-जीवन प्रेम विवाह का ही एक शिथिल और अनौपचारिक रूप है, जिसमें इस संबंध से कभी भी बाहर आने की आजादी के अलावा कुछ भी चित्ताकर्षक नहीं है। और, संबंध से बाहर आ जाना? यहाँ भी क्या यह आसान होता है? बस फर्क यही है कि तलाक में कोर्ट-कचहरी का सहारा लेना पड़ता है और यहाँ अपने बंधन खुद ही काटने होते हैं, जैसे कोई तेज चाकू से अपनी चमड़ी खुद तराश रहा हो। हमारे समाज में मामला पश्चिम की तरह नहीं है कि चाय बनाने जितने समय में प्रेम हो जाए और प्याला धोने जितने समय में मुँह उठा कर दूसरी तरफ चल दिया जाए।

संबंधों का एक सत्य यह है कि जो जितना प्रेम करता है, उसे उतना ही ज्यादा सहना पड़ता है। जो कम प्रेम करता है, वह उतना ही कम दबता है। उसे किसी की परवाह नहीं होती। जिसे परवाह होती है, उसकी संवेदना की बनावट भी वैसी ही होती है। वह स्वतंत्रता और समानता की कामना करता है (या, करती है), लेकिन प्रेम की बलि-वेदी पर वह इनकी कुरबानी भी कर सकता है (या, कर सकती है)। असल में, मामला यह है कि सिर्फ छूँछी स्वतंत्रता या समानता लेकर हम करेंगे क्या, अगर उसमें कुछ कंटेन्ट न हो? सब से पहला सवाल जीने का होता है। उसके बाद समानता का सवाल उठता है। किसी के पास स्वतंत्रता और समानता है, लेकिन ऐसी कोई जमीन नहीं है जहाँ वह इनका अनुभव कर सके, तो वह इन अधिकारों का करेगा क्या? कर्तव्य और अधिकार जीवन के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं। इसीलिए पुरुष या स्त्री प्रेम की गुलामी सहने के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं, प्रेम मुक्त करता है। मैं समझता हूँ, प्रेम बंधनों में जकड़ देता है।

लेकिन इस संक्षिप्त बातचीत से जो ज्यादा अहम बात समझ में आई, वह कुछ और है। किसी संबंध का चरित्र कैसा होगा, यह हमेशा उस संबंध के द्वारा परिभाषित नहीं होता। आदमी की तरह संबंध भी लचीले होते हैं। एक ही तरह के संबंध में, जैसे मालिक और कर्मचारी, मैनेजर और क्लर्क, संपादक और सहायक संपादक, हर आदमी अलग-अलग तरह का व्यवहार कर सकता है। जो चाटुकार है, वह चाटुकारिता करेगा। जिसे स्वाभिमान प्रिय है, वह स्वाभिमान

कर्तव्य और अधिकार जीवन के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं। इसीलिए पुरुष या स्त्री प्रेम की गुलामी सहने के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं, प्रेम मुक्त करता है। मैं समझता हूँ, प्रेम बंधनों में जकड़ देता है।

के साथ रहेगा। हम संबंध से परिचालित होते हैं, तो संबंध को परिचालित भी करते हैं। हायर सेकंडरी में हमारे एक मास्टर साहब कहा करते थे, स्वर्ग में नौकर बनने से नरक में शहंशाह बनना बेहतर है। वे शहंशाह तबीयत के आदमी भी थे। किसी को काटते नहीं थे, पर कोई उन्हें काट कर निकल जाए, यह संभव नहीं था।

यही बात प्रेम या विवाह में भी लागू होती है। अगर कोई दब्बू है, तो वह यहाँ भी दब्बू ही रहेगा। अगर कोई तानाशाह तबीयत का है, तो वह यहाँ भी तानाशाही ही दिखाएगा। जिसे खुद स्वतंत्रता और समानता प्यारी है, वह दूसरों को भी इनका आनंद देगा। इसलिए कोई भी बात देश-काल से ज्यादा व्यक्तियों पर निर्भर करती है। चूहों से हम बिल्लियों जैसे व्यवहार की, बिल्लियों से कुत्तों जैसे व्यवहार की और कुत्तों से हिरनों जैसे व्यवहार की उम्मीद नहीं कर सकते। मैं ऐसे व्यक्तियों को भी जानता हूँ जिनके लिए विवाह कोई बंधन नहीं है, और ऐसे व्यक्तियों को भी, जो प्रेम में भी खुद को विवश और पराधीन अनुभव करते हैं।■

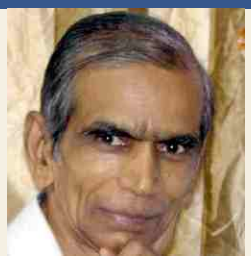

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

रोम रोम में राम

आपने आत्मलीन होकर राम-नाम का संकीर्तन कर रहे हनुमान का चित्र अवश्य देखा होगा जिसमें उनके दोनों हाथों में तालवाद्य खड़ताल है और उनके विग्रह के सब तरफ से राम नाम की प्रतिध्वनि लहरों के समान निकल रही हैं। नाम स्मरण में तन-मन से समर्पित हनुमान की ऐसी अनन्य उपासना को लक्ष्य कर कवि सेनापति ने कहा है :

यह अद्‌भुत, सेनापति, है भजन कोई
कह्यो न बनत तन-मन कौं अरपनौं
जैसो हनुमान जान्यो भजन कौ रस
जिनराम के भजन ही लौं जीवौ माँग्यो अपनो।

प्रश्न यह है कि शब्द का तरंग में रूपांतरण जिस तरह से चित्र में रूपायित किया गया है क्या वैसा वास्तव में सम्भव भी है। क्या इसका आधुनिक भौतिक विज्ञान सम्मत कोई आधार हो सकता है? क्या नाम संकीर्तन करते रहने पर भक्त के शरीर से वही नाम अनुगूँज बन कर दूसरों को सुनाई दे सकती है? अथवा क्या यह भक्ति के आवेग से जुड़ी भावाकुल संकल्पना मात्र है, विश्वास मात्र है जो नितांत व्यक्तिगत है, जिसका भौतिक जगत के यथार्थ से कोई सीधा सम्बन्ध फिलहाल दिखाई नहीं देता? वस्तुतः 'रोम रोम में राम' की अवधारणा, पूर्णतः तथ्यसम्मत है। यह भक्ति की ऐसी उच्चतम अनुभूति है जो जप-योग के साधक को तो होती ही है, उसके निकटस्थ अन्य व्यक्ति को भी इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

एक बात और सिद्ध-साधक के शरीर से निकलने वाली नाम जप की ध्वनि तरंगों को प्रतिध्वनि-इको मानें या अनुगूँज रेसोनेंस? प्रतिध्वनि में, बोला गया शब्द, अन्य वस्तु से टकरा कर कुछ वैसे ही वापिस सुनाई देकर विलीन हो जाता है। जबकि अनुगूँज में समान स्वर पर स्थापित दो तारों में से एक तार को छूने से पैदा हुई ध्वनि दूसरे तार पर स्वतः गूंजने लगती है।

इस नाम संकीर्तन की भक्ति के क्षेत्र में क्या स्थिति है पहिले यह देखते हैं। 'यज्ञानां जपयज्ञः अस्मि' अर्थात सभी प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूँ- ऐसा कह कर कृष्ण ने कर्मकांड रहित और सभी दिखावटी आडम्बर से मुक्त, नामजप विधि को आत्मसाक्षात्कार की सर्वोत्तम विधि घोषित किया है। नाम संकीर्तन में आसक्ति या गुण माहात्म्यासक्ति को नारदभक्तिसूत्र में ११ प्रकार की भक्तियों में से एक बताया है। गीता ११-१६ में भी नाम कीर्तन से ईशअनुराग प्राप्ति की बात कही गयी है। गीता के ही नवम अध्याय मेंसतत कीर्तन को, आराध्य से भक्त के एकाकार होने का उत्तम तरीका माना गया है। नाम संकीर्तन या अखंड जप योग, इस प्रकार, भक्ति योग का ही एक प्रकार मान्य किया गया है। मीराबाई का कथन 'मीरा मगन भई हरि के गुण गाय' और चैतन्य महाप्रभु का 'हरे राम, हरे राम' संकीर्तन के प्रति अनुराग नाम भक्ति के कुछ लोक प्रसिद्ध उदाहरण हैं। महाराष्ट्र के सन्तों ने तो नाम संकीर्तन से लोक जागरण की एक सुदृढ़ परम्परा ही स्थापित की है। श्रीमत शंकराचार्य का भजगोविन्दम् स्तोत्र नाम जप की महिमा का स्फुरण ही है।

तंत्र की दृष्टि से देखें तो दतिया, मध्यप्रदेश की सिद्ध पीताम्बरापीठ के श्रीस्वामीजी महाराज का कथन है कि स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास के रूप में जीव जिस मंत्र का जप करता है, उसे ही 'अ-जपा जप' या 'अ-जपा मन्त्र' कहा गया है, ऐसा जप उच्चारण से नहीं हो सकता। प्राणी प्रतिदिन २१,६०० श्वास लेता है। श्वास बाहर

फोटो : मानस शर्मा

> 'शैडोज ऑफ माइंड' के लेखक एवं दार्शनिक गणित-भौतिकीविद सर रोजर पेनरोज की मान्यता है कि हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में, सैल में हमारा मस्तिष्क उपस्थित रहता है। संभवत: इस अवधारणा से ही नाम जप की गूंज का अधिक तर्क संगत समाधान मिल सके।

फेंकने और अंदर लेने की स्वाभाविक प्रक्रिया में 'हं' और 'स' इन दो अक्षरों का जप निरंतर प्राकृतिक रूप से होता रहता है इसीलिये प्राणी को हंस कहते हैं जो आत्मस्वरूप है परन्तु प्राणी इसे नहीं जानता। इसी हं+स का विलोम स+हं अथवा सोअहम् है जिसका अर्थ होता है : सो ही (वही) मैं हूँ- मैं ब्रह्म हूँ। इस भावना को प्रत्यक्ष अनुभूत करने के लिए गुरुप्रदत्त चैतन्य मंत्र का अजपा जप किया जाता है। मन्त्र या नामजप की इस विधि में श्वास-प्रश्वास मंत्रमय हो जाता है, ऐसा मंत्रजप श्वास के आने और जाने के साथ सहज रूप से चौबीसों घंटे जब होने लगता है तब फिर मंत्रजप में प्रयास नहीं करना पड़ता। तंत्रसार में 'न दोषो मानसेजापे' कहकर मानस जप, शुद्ध-अशुद्ध जाते-आते सोते-जागते किसी भी अवस्था में सभी समय में कर सकने का विधान दिया गया है।

निरंतर नाम जप से भक्ति का आवेग जब अपने परम उन्मेष पर, अपनी उच्चतम अवस्था पर पहुँच जाता है तब साधक जिस नाम का निरंतर स्मरण करता आ रहा होता है वही नाम, साधक के रोम रोम से अनुगूँज बन कर तरंगित होने लगता है, निकलने लगता है। प्रसिद्ध उक्ति है कि -

तन रबाब, मन कीकरी और रगें भईं सब तार
मेरा रोम-रोम सुर देत है, बाजत नाम तिहार।

नाम जप की विधियों में से दो-तीन विधियाँ प्रमुख हैं। पहिली है जोर-जोर से बोलते हुए नाम जप करना, दूसरी है बिना बोले, केवल ओष्ठ-जीभ के सञ्चालन से मंत्र जप करना और तीसरी है बिना ओष्ठ-जीभ हिलाए मंत्र जप करना। तीनों विधियां एक-सा फल देती हैं, परन्तु यह तीसरी विधि जो अ-जपा जप कही जाती है सबसे उत्तम मानी गयी है। अजपा साधक की भावसमाधिगत जीवनचर्या का चित्रण कबीर की साखी 'साधो सहज समाधि भली' में है जिसमें 'जो कछु करों सो पूजा' का भाव बना रहता है।

जप की अजपा वाणी हो या पशु-पक्षी मनुष्यों की बातचीत की वाणी, सभी प्रकार की वाणी के विचार से बोले जाने तक के चार चरण ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में माने गए हैं, चत्वारि वाक् परिमिता पदानि। इनमें से तीन तो गुहा में छिपे रहते हैं और चौथे चरण की वाणी जिसे वैखरी कहते हैं मनुष्य आदि प्राणी बोलते हैं। गणपति अथर्वशीर्ष में गणेश को 'त्वम् चत्वारि वाक् पदानि' वाणी के इन्हीं चार पदों का अधिष्ठाता कहा गया है ये चार पद हैं : परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी। इसकी व्याख्या पाणिनीय शिक्षा के श्लोक 'आत्मबुद्धया... पंचधा स्मृत' के अनुसार की जाती है। ध्वनि मूल का सम्बन्ध आत्मा से है इस स्तर पर यह ध्वनि अव्यक्त होती है और यह परा कही जाती है। बुद्धि और अर्थ (semantics) की सहायता से आत्मा, मानस पटल पर कर्ता, कर्म, क्रिया के चित्र देखता है तब यह पश्यन्ति कही जाती है, पश्य अर्थात देखना। शरीर की ऊर्जा से, मन इस पश्यन्ति को कंठ तक ले आता है तब यह मध्यमा कही जाती है। चौथे चरण में मन, कंठ के ऊपर पांच स्पर्श स्थानों की सहायता से वाणी उत्पन्न करता है जो वैखरी कही जाती है। यह कथन है बापू वाकणकर का जिन्होंने कम्प्यूटर पर हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं का प्रथम ध्वन्यात्मक फोनेटिक कुंजी पटल Phonetic Keyboard की परिकल्पना की और इसे साकार किया और सभी भारतीय लिपियों के परस्पर लिप्यन्तरण के साफ्टवेयर निर्माण में भी अन्यतम योगदान दिया।

तंत्र के अनुसार वाणी का प्रथम परा पद, मूलाधार चक्र में नाद रूप में आरम्भ होता है, वहाँ से चलकर नाभीस्थ मणिपुर- नाभि चक्र में इसे पश्यन्ति, हृदय के अनाहत चक्र के तीसरे पद में मध्यमा और चौथे पद में जीभ से उच्चारित होने पर इसे वैखरी कहा जाता है। यह चौथी वैखरी वाणी ही समस्त प्राणी बोलते हैं।

आधुनिक फिजियालाजी के अनुसार बोलने-समझने की क्षमता मस्तिष्क के बाएं भाग के विशेष केन्द्र से नियंत्रित होती हैं। १२ क्रेनियल नर्व में से कोई चार-पांच नर्व, कंठ, जीभ ओठ आदि का नियंत्रित करती हैं पर इससे वाणी की आन्तरिक प्रक्रिया का क्रमबद्ध विवेचन अभी स्पष्ट नहीं हो सका है। नाम जप की शरीर में अनुगूँज को आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान के माध्यम से समझने में विज्ञान को थोड़ा और वक्त लगेगा। बहु चर्चित पुस्तक 'शैडोज ऑफ माइंड' के लेखक एवं दार्शनिक गणित-भौतिकीविद सर रोजर पेनरोज की मान्यता है कि हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में, सैल में हमारा मस्तिष्क उपस्थित रहता है। संभवतः इस अवधारणा से ही नाम जप की गूंज का अधिक तर्क संगत समाधान मिल सके।

नामजप में, नाम की निरंतरता से जो ऊर्जा निःसृत होती है उससे शब्द के असली स्रोत स्थल मूलाधार चक्र की सक्रियता बढ़ जाती है,और उस शब्द का 'संवाद' नाद के स्थान मूलाधार से स्थापित हो जाता है। इसे संगीत के सिद्धान्त से बेहतर समझ सकते हैं। जब तानपूरा, वीणा, सितार या गिटार आदि तार वाद्य में दो तार एक ही स्वर पर स्थिर किए गए होते हैं तो एक तार के ईशत् स्पर्श से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसकी ठीक वैसी ही अनुगूँज समान स्वर वाले दूसरे

तार पर, बिना बजाए ही होने लगती है। संगीत शास्त्र के स्वर विज्ञान में इसे संवाद कहते हैं। इस पर थोड़ा और जानना रोचक होगा। संगीत के सात स्वर समूह के पहिले सप्तक को मंद्र सप्तक कहते हैं- सारेगमपधनि। इस सप्तक को जब आगे दोहराया जाता है तो दूसरे सप्तक को मध्य सप्तक और तीसरे सप्तक को तार सप्तक कहते हैं। भौतिकी में भी अनुगूँज अर्थात रेसोनेंस सिद्धान्त के अनुसार यदि दो तार एक सी ध्वनि आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) पर हैं तो उनमें परस्पर अनुगूंज होगी। इसी क्रम में स्वर विज्ञान के अनुसार यदि किसी तार वाद्य के दो तार उसी सप्तक के किसी स्वर पर स्थिर किये गए हैं तो उन दोनों की कंपन संख्या समान होने के कारण ऐसे किसी एक तार को छेड़ने पर उसकी ध्वनि की अनुगूँज दूसरे तार पर सुनाई देती है।

थोड़ा और स्पष्ट जान लीजिए। पहिले सप्तक के 'स' (षडज) का अगले सप्तक के 'स' (ओक्टेव) से, दोनों की कम्पन संख्या के विशेष अनुपात के कारण सम-भाव सम्बन्ध होता है, यदि मंद्र 'स' के तार की कंपन संख्या २४० है तो मध्य 'स' की कंपन संख्या दोगुनी, ४८० होगी। तब मंद्र 'स' बजने पर मध्य 'स' की ध्वनि भी सुनाई देगी। इसके अलावा 'स' (षडज) और 'प' (पंचम) में भी क्रमशः २०० और ३५० कम्पन का अर्थात डेढ़ गुना कंपन का संभव समभाव सम्बन्ध होता है इसलिए 'स' के बजाने पर 'प' की ध्वनि भी थोड़े अभ्यास से सुनी जा सकती है। तानपूरा कुछ इसी तरह मिलाया जाता है। जप योग में नाम के निरंतर सुमिरन करते-करते जब शब्द, नाद में रूपान्तरित हो जाता है तो उसका वैसा ही 'समभाव सम्बन्ध' समस्त सृष्टि में गुंजायमान और शरीर के मूलाधार चक्र में अधिष्ठित नादब्रह्म से हो उसी प्रकार हो जाता जैसा समभाव सम्बन्ध षडज का षडज से या पंचम से स्वभावतः होता है।

आपने कंठ संगीत में अक्सर देखा होगा कि गायक गीत या बोल तान के स्थान पर उसी लय में जब केवल आऽऽऽ का आलाप लेता है या तराना स्टाइल के गायन में नोम-तोम, तूमतनन... का गायन करता है तब श्रोता को शब्द और उसके अर्थ दोनों की विस्मृति हो जाती है और मात्र लय से ही असीम आनन्द की अनुभूति होती है। वस्तुतः गीत के शब्द और उसके अर्थ जब नाद में ऐसे घुल जाते हैं जैसे दूध में शकर, तभी संगीत रसिक को नादब्रह्म की ऊँची रसानुभूति होती है इसके पहिले वह गायन के बोल के शब्दार्थ में कुछ अटका-सा रहता है।

तात्पर्य यह कि शब्द जब नाद में रूपान्तरित होता है और श्रोता जब इसके योग्य होता है तभी संगीत रस का परिपाक होता है। इसी प्रकार साधक का शब्दजप, नाद में रूपान्तरित होकर ही सिद्ध साधक के मूलाधार में स्थित नाद ब्रह्म से

साधक का शब्दजप, नाद में रूपान्तरित होकर ही सिद्ध साधक के मूलाधार में स्थित नाद ब्रह्म से तादात्म्य कराता है और तब साधक का शरीर ही मानो संगीत का साज बन जाता है, माध्यम बन जाता है, जिससे नाद ब्रह्म सिद्ध साधक के शरीर से 'रोमरोम में राम' या अन्य जप मंत्र के रूप में मुखरित होने लगता है।

तादात्म्य कराता है और तब साधक का शरीर ही मानो संगीत का साज बन जाता है, माध्यम बन जाता है, जिससे नाद ब्रह्म सिद्ध साधक के शरीर से 'रोमरोम में राम' या अन्य जप मंत्र के रूप में मुखरित होने लगता है।

सुरत शब्द योग में शब्द का बहुत प्रताप माना गया है। पञ्च तत्वों में से आकाश तत्व का गुण शब्द है। शब्द की आवृत्ति बढ़ाने पर शब्द ही ज्ञान के प्रकाश का रूप बन जाता है। पहिले शब्द आएगा फिर प्रकाश होगा। जप अजपा मन की एकाग्रता को बढ़ाता है और ध्यानस्थ करता है। भौतिक विज्ञान के अनुसार शब्द की ध्वनि में भी लघुतम विद्युत-ऊर्जा होती है। हमारा शरीर विभिन्न जैव- भौतिक-रासायनिक ऊर्जा का, बायोफिजिकल कैमिकल एनर्जी का संगठित रूप ही तो है। इसलिए शब्द से निकली ध्वनि की ऊर्जा का, संगीत की ध्वनि के समान ही शरीर के तंत्र पर प्रभाव पड़ना वैसे भी स्वाभाविक है। शरीर तंत्र पर संगीत के प्रभाव को देखते हुए ही राग गायन का दैनिक काल और ऋतु का निर्धारण किया गया है।

नाम जप का प्रभाव क्षेत्र भौतिक और आध्यत्मिक दोनों के बीच फैला है: गोस्वामी तुलसीदास दोहावली में कहते हैं कि घर की देहलीज पर रखा दीपक घर के भीतर और घर के बाहर, दोनों तरफ रोशनी करता है उसी प्रकार जीभ रूपी देहलीज पर राम नाम रूपी दीपक-मणि रखने पर अन्तरमन में ज्ञान का प्रकाश फैलेगा और बाहर की दुनिया के क्लेशों में भी मार्गदर्शन मिलेगा:

रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरेहूँ जौ चाहसि उजिआर।।

इसलिए व्यक्ति किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या मत का मानने वाला हो, मौन नाम स्मरण के माध्यम से एक छोटी सी शुरूआत तो कभी भी कर सकता है। अपनी मन वीणा के स्वर यदि हम उस अव्यक्त के सुर के साथ साधने की चेष्टा करते रहेंगे तो एक न एक दिन वह 'अव्यक्त' गूँज बनकर मन को अवश्य झंकत करेगा; तब मन के विसर्जन का यह अवरोही स्वर आत्मा के नव सृजन का आरोही स्वर बन जाएगा।■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

सुरगुरुं

फोटो : मानस शर्मा

पूर्वी सभ्यताओं में गुरु का महत्व बहुत अधिक रहा है। भोले बाबा अपनी वेदान्त छंदावली के भाग ५ में लिखते हैं कि गुरु कीन कृपा भव त्रास गई/मिट भूख गई छुट प्यास गई। तुलसीदास भगवान राम को 'सुरगुरुं' कहते हैं, अपने समय के अति प्रचलित सद्गुरु शब्द का इस्तेमाल वे नहीं करते। कबीर-वाणी तो उनके समय में और ज्यादा ही गुंजित रही होगी। सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार वाली वाणी। सतगुरु साँचा सूरिवाँ वाली वाणी। उनके राम की तरह कबीर का 'सतगुरु' भी धनुर्धर था और उसके बाण भी ज़बर्दस्त परिवर्तन और विपर्यय का परिदृश्य उपस्थित कर देते थे : 'गूँगा हुआ वाबला, बहरा हुआ कान/पाऊ थे पंगुल भया, सतगुर मार्या बान।' जिस तरह से 'सतगुरु' इंद्रियों से और एन्द्रिकता से मुक्त करता था, तुलसी के राम भी वही करते थे। वे भी सच्चे शूरवीर- साँचा सूरिवां थे। सुन्दरदास के सद्गुरु की तरह तुलसी के राम भी हैं : 'बहे जात संसार में सद्गुरु पकरे केश।' सुन्दरदास ने गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक भी लिखा और गुरु कृपाष्टक भी जिसमें "सद्गुरु सुधा समुद्र है/सुधामई हैं नैन/नष शिष सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन" जैसा प्रसिद्ध दोहा है। सद्गुरु और सुरगुरु दोनों ही अमृत स्वरूप हैं। तुलसी ने गुरु के पद-पद्म-पराग की प्रारम्भ में ही स्मृति करते हुए 'अमिअ मूरिमय चूरन चारू' की चर्चा भी की थी और रामनाम की वंदना में 'कालकूट फलु दीन्ह अमी को' के नाम प्रभाव का वर्णन किया था। गुरुनानक ने 'सतिगुर सिउ आलाई बेड़े डुबणि नाहि भउ' की समझाइश दी थी कि सद्गुरु को पुकारो तो तुम्हें तब भी बेड़ा डूबने का भय नहीं रहेगा जब बादल फट रहे हों, आँधी चल रही हो, बाढ़ के कारण लाखों लहरें उठ रही हों। भगवान राम को ऐसी ही मुसीबत में जब उनके भक्तों ने पुकारा तो वे दौड़े चले आए। नानक अकेले नहीं हैं। सुक्खासिंह भी गुरविलास में लिखते हैं : ताको सतिगुर जानिये अद्भुत जाके बाक।' भगवान राम की वाणी इतनी आश्वस्ति देने वाली है कि बाणों के घावों से पीड़ित गिद्धराज जटायु तक को शान्ति मिलती है।

तो भी तुलसी राम को सद्गुरु न कहकर सुरगुरु क्यों कह

रहे हैं? क्या सद्गुरु ब्रह्मर्षि जैसी कोई चीज़ है और सुरगुरु राजर्षि जैसी? क्या यह कोई वशिष्ठ-विश्वामित्र जैसा द्वन्द्व हो सकता है? ऐसे 'देव' वाली दिव्यता तो 'गुरु' में है ही। स्वयं तुलसी मानस के शुरू में ही कह देते हैं : 'श्री गुरु पद नख मनि मगन जोती/सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।' दिव्य सृष्टि तो है ही। यह दिव्य प्रकाश भी है, सहजोबाई यही कहती हैं :- 'सहजो गुरु दीपक दिया, रोम रोम उजियार/तीनों लोक दृष्टा भये, मिट्यो परम अंधियार।'

दरअसल स्कन्द पुराण की गुरु गीता हो या द्वयोपनिषद- दोनों में गुरु की अंधकार का नाश करने वाली भूमिका ही रेखांकित हुई है :-

गुकारस्त्वन्धकारः स्याद् रूकारस्तेज उच्यते
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुदेव न संशयः।।

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है तेज। अज्ञान का नाश करने वाला तेजरूप ब्रह्म गुरु ही है, इसमें संशय नहीं है। द्वयोपषिद् का कहना है :

गुशब्दस्त्वन्दकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

कि 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार। और 'रु' का अर्थ है उसका 'निरोधक'। अंधकार का निरोध करने से -'गुरु' कहा जाता है। अंधकार और प्रकाश वाले इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से कृष्णमूर्ति, जॉन ग्राइम्स, थामस मरे आदि की सहमति है किन्तु रीएंडर क्रेनेन्बोर्ग नामक एक डच धर्मशास्त्री इसे 'जनता का व्युत्पत्तिशास्त्र' बताते हुए कहता है कि गुरु शब्द का अंधकार और प्रकाश से कोई सम्बन्ध शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो नहीं है। 'जिन दीपक दीया हाथि' 'महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर', 'परम जोति प्रकाश', 'मिट्यो भरम अंधियार' जैसे गुरु प्रसंगों में चाहे कबीर हों, तुलसी हों या सहजोबाई- सभी ने अंधकार और प्रकाश के इस पट का इस्तेमाल किया है।

सिक्ख समाज को पता नहीं कभी इस दृष्टि से विशेषतः क्यों नहीं देखा गया कि यह समाज वस्तुतः इस मामले में पूरे विश्व में अनूठा है कि जब यहाँ गुरु-शिष्य परम्परा से सिर्फ़ किसी संगीत घराने या कला-विशेष का निर्माण नहीं हुआ बल्कि पूरी जीवन पद्धति का निर्माण हुआ, एक समाज का निर्माण हुआ। गुरुनानक-गुरु अंगदेव-गुरु अर्जुन देव-गुरु गोविन्द सिंह आदि दस गुरु थे, तो उनके शिष्य -सिक्ख- हुए। मूल बात शिक्षा की थी। गुरु ने ज्ञान ही नहीं, दिशा और प्रासंगिकता भी दी। सिक्ख को सिखाया गया। जीवन का कोई अंग नहीं, जीवन जीने का पूरा तौर तरीक़ा। सिर्फ़ व्यक्ति को ही नहीं, इस समाज ने किताब को भी गुरु का दर्ज़ा दिया। श्री गुरुग्रंथ साहिब क्या था?

गुरु कई प्रकार के हो सकते हैं। सूचक गुरु, वाचक गुरु, बोधक गुरु, निषिद्ध गुरु, विहित गुरु, कारणाख्य गुरु तथा परम् गुरु। परम् गुरु ही सद्गुरु है। कबीर के समय में भी नकली गुरु खूब चलते रहे होंगे। इसलिए उन्होंने खेद व्यक्त किया था : 'कबीर सतगुरु न मिल्या, रही अधूरी सीख/स्वांग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख।' ऐसे लोग आज भी हैं। बस इनका माँगने का स्तर कुछ ऊँचा हो गया है। कहाँ तो सतगुरु की अवधारणा में ही माँगने का निषेध था : 'मांगन मरन समान है मति कोई मांगे भीख/मांगन से मरणा भला यह सतगुरु की सीख।' अब मांगने की स्थिति ख़त्म है। अब तो उसका बाजार है। मैंने गुरु के नाम पर बाजारों के नाम रखे जाते तो देखे हैं। मसलन अमृतसर का गुरु बाजार लेकिन आधुनिक समय में तो गुरुडम का ही बाज़ार विकसित हो गया। इसमें हमारी मदद करने के लिए सारलो की गुरु रेटिंग सर्विस भी शुरू हो गई है जिसमें महान से लेकर बोगस तक गुरुओं का श्रेणीकरण है। ऐसे गुरु भी इस युग में हुए जिन्होंने तोक्यो उपमार्ग पर नर्व गैस ऑपरेशन के ज़रिए लोगों को मरवा डाला या उन्हें एकत्र आत्महत्या के लिए प्रेरित किया। दूसरी ओर आद्य शांति, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, रमन महर्षि, ओशो, जिद्दू कृष्णमूर्ति, जार्ज गुरजिएफ, निसर्गदत्त महाराज, बोधिधर्म, श्री समर्थ, सिद्ध धर्मेश्वर महाराज, एकहार्ट, नीमकरोली बाबा, मेहर बाबा, दलाई लामा (लामा शब्द का तिब्बती अर्थ ही 'गुरु' है), स्वामी चिन्मयानंद, शिर्डी सांईबाबा, परमहंस योगानंद, बाबा हरिदास, श्री श्रीरविशंकर, श्री आत्मानंद आदि हैं जिन्हें उत्कृष्ट श्रेणी दी गई है। पॉल ब्रन्टन ने गुरु रेटिंग की पद्धति पहले पहल विकसित की थी। अब तो ट्रेन्डी आध्यात्मिक आश्रम बनने लगे हैं। स्पिरिचुअल लॉज ऑफ़ सक्सेस जैसी बातें चल रही हैं। दीपक चोपड़ा हैं जो एजलेस बॉडी टाइमलेस माइंड, क्रिएटिंग एफ्लुएँस, द सेवन स्पिरिचुअल लॉज ऑफ़ सक्सेस जैसी पच्चीसों पुस्तकों के ज़रिए वैदांतिक प्रज्ञा को आधुनिक मुहावरा उपलब्ध करा रहे हैं जिनमें उनकी अँग्रेज़ी वक्तृता की मदद भी है। श्री श्रीरविशंकर येल विश्वविद्यालय के दिव्यता स्कूल के परामर्शदात्री मंडल में शामिल हुए एकमात्र ग़ैर-पश्चिमी संत हैं। आज के गुरु अपनी किताबों, संगीत व अन्य सहवर्ती चीज़ों का लाखों का उद्योग चलाते हैं। उन्हें सेलेब्रिटी स्टेटस है, इसलिए उनका मीडिया प्रमोशन भी असाधारण है। ओपराह विन्फ्रे के टेलीविज़न शो के बाद के एक दिन में दीपक चोपड़ा की 'एजलेस बॉडी टाइमलेस माइंड' पुस्तक की एक लाख बीस हज़ार प्रतियाँ बिक गईं। विवेकानन्द ने श्री रामकृष्ण स्तोत्र में लिखा था : यामि गुरुशरणं भववैद्यम् अर्थात् भवरोग के लिए

आज के गुरु अपनी किताबों, संगीत व अन्य सहवर्ती चीज़ों का लाखों का उद्योग चलाते हैं। उन्हें सेलेब्रिटी स्टेटस है, इसलिए उनका मीडिया प्रमोशन भी असाधारण है। ओपराह विन्फ्रे के टेलीविज़न शो के बाद के एक दिन में दीपक चोपड़ा की 'एजलेस बॉडी टाइमलेस माइंड' पुस्तक की एक लाख बीस हज़ार प्रतियाँ बिक गईं।

वैद्यस्वरूप गुरु की शरण में जाता हूं। और आज तो 'सोल-डॉक्टर्स' पैदा हो गए हैं। आज व्हाट इज़ रिअली रॉंग या हाउ टु बी हैप्पी जैसी पुस्तकें जिनमें भारतीय धार्मिक दर्शन और मनोवैज्ञानिक उपचार तकनीकों का आधुनिक अमेरिकी जीवन-संदर्भों और समस्याओं के बरक्स वर्णन होता है, बेस्टसेलर्स हैं। लोगों का कहना है कि यह 'डिज़ाइनर रिलीजन' का दौर है। नार्मन डी वीरगुड ने 'हाऊ टू बिकम अ मॉर्डन गुरु' पर एक पुस्तक भी लिख दी है जो सात घंटे से लेकर सात दिन तक की अवधि में आपको भी आधुनिक गुरु बनाती है। इसके कुछ फण्डे हैं। पहला, लोगों को सोचने दो कि तुम्हारे पास कुछ ऐसा है जो ख़रीदा जाने योग्य है लेकिन जताओ यह कि तुम बेच नहीं रहे हो। दूसरा, लोगों से माँग करो, न कि वे तुमसे माँग करें। लोगों को अच्छा लगता है यदि उनसे अपेक्षाएँ की जाएँ और वे उसका ही आदर करते हैं जो उन्हें किसी चुनौती की ओर अग्रसर करता है। एक गुरु के रूप में शिष्य पर माँग रखने का अधिकार तुम्हें पहले से ही है। यह पुस्तक बहुत मज़ेदार और दिलचस्प है लेकिन यह बोगस गुरुओं की भीड़ और बाढ़ को बढ़ाने के लिए अच्छा मसला है। इसी तरह से 'द स्लेट गाइड टु गुरुज़' है। यह गुरु-गाइड पुस्तक भी हमें गुरु खोज में मदद करती है। कुछ लोग इस गुरु-बाढ़ को संतुलन की संध्या के रूप में चित्रित करते हैं। औपनिवेशिक समय में ईसाई मिशनरियों ने जिस तरह की सांस्कृतिक अग्रता (कल्चरल लीड) हासिल की, अब उसी का हिसाब चुकाया जा रहा है। लेकिन इसकी अभद्रताएँ भी हैं। बिज़नेस २.० मैगज़ीन ने अभी स्वामियों और गुरुओं के लालच, वासना और अहमोन्माद (egomania) पर 'गुरुज़ बिहेविंग बैडली' नामक एक लेख प्रकाशित किया है। आज योग का अमेरिका में अरबों रुपए का कारोबार है और विक्रम चौधरी जैसे 'सितारों के गुरु' भी हैं जिन्होंने अपनी प्रिय योगमुद्राओं का पेटेन्ट कराकर उन्हें बेचने का काम शुरू कर दिया है। १९९४ में मैसाचुसेट्स में अमृत देसाई नामक एक योगी ने ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाते पढ़ाते तीन शिष्याओं से सम्बन्ध बना लिए। १९९७ में एक महिला ने अपने 'स्वामी' के विरुद्ध कामुक आक्रमण का १.९ मिलियन डॉलर का मुकदमा जीता। विक्रम चौधरी ने अमेरिका भर में 'उनके' योग की फ्रेंचाइज़ी दी है। यह पता नहीं कि वाणिज्य का कितना आध्यात्मिकीकरण हुआ, लेकिन यह तय है कि अध्यात्म का वाणिज्यीकरण ज़ोरों पर है। लोगों ने आम आदमी के आत्मविश्वास को एक मार्केटेबल कमोडिटी बना लिया है। बीबीसी के प्रसिद्ध कार्यक्रम टाइम शिफ्ट में ब्रिटिश समाज पर गुरुओं के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए 'गुरुज़' नामक एक प्रसारण आया था। इसके बाद क्रिस्टोफर हिचेंस की एक डॉक्यूमेंट्री भी आई : 'भगवान श्री रजनीश, द गॉड दैट फ्लेड'। इसमें रजनीश को पूर्वी गुरुओं में सबसे 'कुख्यात' कहा गया। इसमें संदेह नहीं कि बीबीसी और अमेरिकी निर्देशक को रजनीश को समझने में बरसों लगेंगे, इसमें भी संदेह नहीं कि अमेरिकी सरकार से रजनीश की टकराहट के सत्य को लिखने का साहस और ईमानदारी कोई पश्चिमी लेखक कभी बटोर नहीं पाएगा, इसमें भी संदेह नहीं कि भारतीय गुरुओं के प्रति पश्चिमी पूर्वग्रह न केवल सघन हो रहे हैं बल्कि अब एकजुट भी हो रहे हैं- लेकिन यह भी सच है कि गुरुओं में से कुछ गुरुघंटाल भी हो गए हैं। डायना अल्सडैट और जो एल क्रेमर ने 'द गुरु पेपर्स : मास्क ऑफ़ अथारिटेरियन पॉवर' नामक पुस्तक में वैसे तो विभिन्न धर्मों पर टिप्पणियाँ कीं, लेकिन सबसे ज़्यादा गुस्सा बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के गुरुओं पर उतारा जिनका एकाधिकारवाद एकदेववादी धर्मों की तुलना में ज़्यादा ढँका छुपा रहता है लेकिन है इसी कारण से ज़्यादा घृणास्पद। इस पुस्तक के लेखक रहस्यवादी 'विज़न' और 'व्याख्याओं' में फ़र्क़ करते हैं। पहले से रूपांतरण होता है, दूसरे से नहीं। वे कहते हैं कि 'तत्वमसि' का ३००० साल पुराना सिद्धांत और प्रयोग पूरी तरह असफल हुआ। आदमी आज भी उतना ही स्वार्थी और बँटा हुआ है। यह 'ऐक्य' का धर्मशास्त्र उस भारत में जन्मा जो दुनिया की सबसे ज़्यादा बँटी हुई, विभाजित संस्कृति है। समर्पण के ज़रिए ही मुक्ति होगी; ऐसा मानना विरोधाभासी ही नहीं है, आर्वेलियन है। उन्हें पूर्वी धर्मों से विशेष नफ़रत है और उन्हें इस पर आश्चर्य है कि क्यों हम उन्हें जागतिक सत्य में प्रवेश का एक पवित्र और विशिष्ट प्रवेश-पथ मानते हैं। वे तो मात्र 'आदिम पितृसत्तात्मक समाज हैं' जिनमें कठोर सेक्स भूमिकाएँ और मानसिकताएँ नियत थीं। गुरु अपने को न केवल अध्यात्म बल्कि हर मामले में ज्ञाता मानने लगते हैं और एकाधिकारवादी हो जाते हैं। 'द गुरु पेपर्स' पढ़ना पूर्वग्रह के पथ देखना ही नहीं है। वह यह देखना भी है कि एकाधिकारवाद के नाम पर गुरुहुड का विरोध करने वाले स्वयं कितने एकाधिकारवादी तरीके से अतीत को और पूर्व को ख़ारिज़ कर रहे हैं। इन्हें भारत विभाजित तो दिखाई दिया लेकिन भारत की सहस्त्राब्दियों से चली आई एकता नहीं दिखी। इन्हें यह दिखा कि कैसे एक धर्म के होने के बावजूद पचासों ईसाई देश अलग-अलग हैं, कैसे एक धर्म के होने के बावजूद दुनिया में ५२ मुस्लिम देश हैं, लेकिन हिन्दुत्व राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक होने के बावजूद इतने बड़े भारत को जोड़े हुए है। पूर्वी धर्मों से कई गुना ज़्यादा पितृसत्तात्मकता तो उन ग्रीको-रोमन समाजों में थी जिनमें

आज 'व्हाट इज़ रिअली रॉंग' या 'हाउ टु बी हैप्पी' जैसी पुस्तकें जिनमें भारतीय धार्मिक दर्शन और मनोवैज्ञानिक उपचार तकनीकों का आधुनिक अमेरिकी जीवन-संदर्भों और समस्याओं के बरक्स वर्णन होता है, बेस्टसेलर्स हैं। लोगों का कहना है कि यह 'डिज़ाइनर रिलीजन' का दौर है।

स्त्री के भीतर आत्मा का होना ही नहीं माना जाता था और जिस योरोप में अभी १६८१ तक स्त्री पुरुष एक मंच पर नृत्य तक साथ-साथ नहीं कर सकते थे। जहाँ तक गुरु के सामने समर्पण का सवाल है, द गुरु पेपर्स कृष्णमूर्ति के विचारों से बुरी तरह प्रभावित है। लेकिन इस पुस्तक को पढ़कर मेरे मन में प्रश्न यही घूमता रहा कि समर्पण (submission) का इतना खटराग इन लोगों ने क्यों लगा रखा है। क्या रास्ते को न जानने वाला रास्ता जानने वाले से पूछ ले तो वह समर्पण हो जाता है? ऋग्वेद में यही तो कहा गया था : 'अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्याप्रात स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः' मार्ग को न जानने वाला अवश्य ही मार्ग को जानने वाले से पूछता है। वह क्षेत्रज्ञ विद्वान से शिक्षित होकर उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है। वैसे यदि किसी बाहरी गुरु से इंकार है तो भागवत् की सलाह है : आत्मनो गुरुरात्मैव। अपना गुरु स्वयं प्राणी ही होता है। लेकिन कबीर जब सद्गुरु की चर्चा कर रहे थे उनका ध्यान ऋग्वेद की इस राह वाली बात पर ही था : चलौ चलौ सबको कहै, मोहि अँदेसा और/साहिब सूँ पर्चा नहीं, जाइगे किस ठौर। सहजोबाई के दिमाग में भी यही रास्ते वाली बात थी जब वे 'गुरु बिना मारग न चले' कह रही थी, नूर मुहम्मद जब अनुराग बाँसुरी लिख रहे थे तब वे भी इस मार्ग वाली बात को ले रहे थे 'गुरु बिन पंथ न पावै कोई'। इस पुस्तक के लेखकों को भ्रम इस बात को न समझने से हुआ कि गुरु ईसाई परम्परा के 'सन्स ऑफ़ गॉड' (ईश्वर के पुत्र) नहीं हैं बल्कि भारतीय मान्यता में तो हम सभी ईशपुत्र हैं। गुरु-शिष्य परम्परा पश्चिम में गुलामी और अधिनायकवाद पैदा करती रही होगी किन्तु भारत में तो सृजन का मंच बनी। संगीत में और नृत्य में। सुर के गुरु रहे आए और उन्होंने कितने लोगों को सुर साधना सिखाई और कितनों को सुर से सुर मिलाना और कितनों को सुर के अनुसार भाव अनुभाव पद संचालन करना सिखाया।

> भारत में गुरुकुल ही नहीं रहे हैं बल्कि वेदान्त, योग, तंत्र और भक्ति के बीच से बहती हुई गुरुओं की एक धारा भी रही है। मोक्ष के लिए एक जीवित गुरु का होना जो शिष्य को जीवन्मुक्त करे। गुरु को ईश्वर-सम या ईश्वर से भी पेश्तर माना गया है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी गुरु सच्चे होंगे। उपनिषद्काल से नक्काल और मक्कार गुरुओं के प्रति सावधान किया जाता रहा है। 'अँधे अँधा ठेल्या' की स्थिति बताई जाती रही है। कुलावर्ण तंत्र वित्तापहारक गुरुओं का बहुतायत में होना बता रहा है। डॉ. डेविड सी. लीन अपनी पुस्तक में गुरुओं के बारे में ७ बिन्दुओं की एक चेक लिस्ट देते हैं। पुस्तक का नाम है : एक्सपोज़िंग कल्ट्स। एन्थनी स्टोर की पुस्तक 'फीट ऑफ़ क्ले : अ स्टडी ऑफ़ गुरुज़' में एक चेक लिस्ट दी गई है। स्टोर गुरु शब्द का इस्तेमाल जीसस, मुहम्मद, बुद्ध, गुर्जिएफ, रूडोल्फ स्टीनर, कार्ल युंग, सिग्मंड फ्रायड, जिम जोन्स और डेविड कोरेश जैसी विविधता के व्यक्तियों के लिए करता है। पर इनके लिए प्रॉफेट शब्द के इस्तेमाल से वह बचता है। कर्मा कोला पुस्तक में एक जर्मन अर्थशास्त्री लेखिका गीता मेहता से कहता है कि मेरे विचार से गुरुओं के लिए क्वालिटी कंट्रोल प्रवर्तित किया जाना चाहिए। फ्रांस में तो गुरु नकारात्मक अर्थ वाला शब्द बन गया है।

पर सवाल यह है कि बिशपों और प्रीस्ट के खिलाफ़ यह आक्रामकता नहीं है। भारत में भी वे होली फादर का स्टेटस प्राप्त किए हुए हैं। जीसस के द्वारा ब्रेड्स को मल्टीप्लाई करने पर हँसी नहीं उड़ाई जाती। सही है। उड़ाना भी नहीं चाहिए। लेकिन साईं बाबा की चमत्कारिक शक्तियों पर इंडिया टुडे का आक्रामक अंक आ जाता है और मखौल उड़ाने को बीबीसी की डाक्यूमेंट्री बन जाती है। एक सन ऑफ़ गॉड है तो दूसरा गॉडमैन! डेकन हेरल्ड श्री श्रीरविशंकर को 'गॉडमैन' कहता है, इंडियन एक्सप्रेस उन्हें 'गुरु ऑफ़ द रिच' कहता है जबकि उनके ग्राम विद्यालय इतने अच्छे चल रहे हैं कि वहाँ पढ़ने वाले बच्चों की परीक्षाओं में ९५ प्रतिशत की सफलता दर है, कर्नाटक के सबसे भीतरी गाँवों के पारों में यहाँ तक कि नक्सली बस्ती तक में उनके प्रकल्प संचालित हैं। उनकी सुदर्शन क्रिया कैलीफोर्निया के कारपोरेट कार्यालयों से लेकर तिहाड़ जेल के कैदियों तक चलती है।

इस सन्दर्भ में 'सुरगुरु' की याद एक ऐसी याद है जो इस दुनिया के पार्थिव आकर्षणों से कहीं ऊपर सच्चे देवत्व का साक्षात्कार कराने वाला है। भारत में गुरुकुल ही नहीं रहे हैं बल्कि वेदान्त, योग, तंत्र और भक्ति के बीच से बहती हुई गुरुओं की एक धारा भी रही है। मोक्ष के लिए एक जीवित गुरु का होना जो शिष्य को जीवन्मुक्त करे। गुरु को ईश्वर-सम या ईश्वर से भी पेश्तर माना गया है। सहजोबाई ने तो यहाँ तक कहा -

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ
गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ
हरि ने जन्म दिया जग माहीं
गुरु ने आवागमन छुटाहीं
हरि ने पाँच चोर दिए साथा
गुरु ने लई छुटाय अनाथा
हरि ने कर्म मर्म भरमायो
गुरु ने आतम रूप लखायो
चरनदास पर तन मन बारूँ
गुरु न तजूँ हरि को तज डारूँ

गुरु के प्रति मध्यकालीन साहित्य में ऐसी बहुत सी उक्तियाँ हैं, लेकिन सहजोबाई की ये पंक्तियाँ न केवल गुरु के प्राधान्य को बताती हैं बल्कि

ईश्वर के प्रति सहजोबाई के आत्मविश्वास को भी। इन्हीं सब चीज़ों का नतीजा है पारम्परिक भारतीय परिवार में उस वयस्क व्यक्ति को हीनता की नज़र से देखा जाता है जिसके गुरु न हो। गुरु प्रवृत्ति से होता है, शिक्षक वृत्ति (वेतन) से। गुरु दीक्षा देता है, शिक्षक शिक्षा देता है। उपनिषद् गुरु-शिष्य परम्परा का ही परिणाम प्रतीत होते हैं क्योंकि वे गुरु के पास बैठकर प्राप्त की गई दीक्षा का नतीजा थे। गुरु दक्षिणा की अवधारणा भारतीय मानस में बद्धमूल है। गुरु से प्राप्त ज्ञान हमेशा किसी तरह से संवाद पर आधारित नहीं होता। कई बार वह शक्तिपात होता है। प्रसिद्ध भारत शास्त्री जार्ज फ्यूरस्टीन ने कहा कि गुरुओं का जो दैवीकरण हो रहा था, उसे प्रतिसंतुलित करने के प्रयोजन से कुछ हिन्दू सम्प्रदायों ने यह कहना शुरू किया कि वास्तविक गुरु भावातीत आत्म है। फिर भी सच यह है कि गुरु पूजा चलती रही। गुरु पूर्णिमा मनाई जाती रही। हिन्दू साप्ताहिकी में गुरुवार के दिन को विष्णु का दिन माना भी जाता रहा।

देवताओं के गुरु के रूप में यदि इस शब्द की व्याख्या की जाती है तो क्या इसका अर्थ यह है कि भगवान राम को बृहस्पति की भूमिका सौंपी जा रही है। बृहस्पति हमारे शास्त्रों में देवताओं के गुरु हैं वैसे ही जैसे दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य हैं। देवताओं के गुरु होने से बृहस्पति इस स्थिति में पहुँचे कि गुरु नाम ही उन पर रूढ़ हो गया 'देवानां च ऋषिणां च गुरुं कांचन सन्निभम्/बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।' लेकिन सुरगुरु के रूप में तुलसी के राम को बृहस्पति की तरह नौ ग्रहों में से एक नहीं बनाना चाह रहे होंगे। ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजस इन छः विशेषताओं से सम्पन्न विष्णु देवताओं में श्रेष्ठ हैं। देवताओं में श्रेष्ठ (सुरगुरु) होने की बात, कुछ इतिहासकारों के अनुसार, हिन्दू धर्म में बाद में आई। लेकिन स्वयं ऋग्वेद में विष्णु का उल्लेख ९३ बार हुआ है। वृत्र को मारने में इंद्र को उनकी मदद लेनी पड़ती है और तीन क़दमों वाली विचक्रमनस कथा के भी नायक हैं। त्रिविक्रम हैं, उरुक्रमा हैं। पुरुष सूक्त के पुरुष वहीं हैं। विश्वकर्मा सूक्त उन्हें देवाधिदेव के रूप में संदर्भित करता है। सुरगुरु की कल्पना भी ऋग्वैदिक (१.२२.२०) है : परमं पदं सदा पश्यन्ति सुराया :- सभी सुर (देवता) भगवान विष्णु के पैरों की ओर देखते हैं। ऐतरेय ब्रह्मण भी उन्हें देवाधिदेव के रूप में देखता है। चूँकि शिव और विष्णु का एकात्म है, इसलिए आश्चर्य नहीं कि 'वंदे शुम्भुमुमापतिं सुरगुरुं के रूप में शिव-वंदना भी की गई है।' सुंदर कांड भी रुद्रावतार हनुमान का कांड है। राम को कहा भी गया है-स एष पूर्वेषामपि गुरुः।

लेकिन सुरगुरु के इन पारम्परिक अर्थों के अलावा मुझे लगता है कि इसका एक सीधा सादा अर्थ भी है। पूर्व में हम गीर्वाण के प्रसंग में देवताओं को भले आदमियों के अर्थ में व्याख्यायित कर चुके हैं। लेकिन भले व्यक्तियों को भी प्रबोधन और निर्देशन की आवश्यकता होती है। वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में गुणों की समष्टि की संज्ञा देवता हैं। राम वही करते हैं। ये देवता ही हैं जो पृथ्वी पर रीछ और वानर के रूप में उतरे हैं। उनके अवतार से पूर्व की पृष्ठभूमि ही यही थी :-

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना।।
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा।।

> *माना कि सज्जन को सत्ता में बैठे मदांध लोग तिनके के समान समझते हैं। लेकिन भगवान श्रीराम तिनकों से ऐसी रस्सी बनाना जानते हैं कि जो सत्ता के मदांध और मतवाले हाथी को बाँध सके।*

निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेबहु जाइ।।

और यह होता भी है :-

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।।

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा।।

ये भले लोग पृथ्वी पर यहाँ वहाँ फैल जाते हैं : गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी/रहे निज निज अनीक रुचि रूरी'। अभी 'निज निज' है क्योंकि अभी 'सुरगुरु' का साथ नहीं मिला है। भले लोगों की अच्छाइयाँ बिखरी हुई हैं। बुरे तो मिल बैठते हैं। चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह। उनके बीच तो एका हो जाता है। उनकी गैंग और बैंड बन जाते हैं। माघ शिशुपाल वध में कहते हैं - सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते तिरस्कृतिं बहुभिरसंशयं परै':- 'तेजस्वी व्यक्ति भी संगठित होकर आए हुए बहुत से शत्रुओं द्वारा निश्चित रूप से तिरस्कृत कर दिया जाता है।' राम को यह सच्चाई पता है, सज्जन के एकांत स्वभाव की सच्चाई। यह स्थिति अंततः सज्जनों के अहित में ही कार्य करती है। अतः वे उस सज्जनता को एक दिशा, एक उद्देश्य, एक प्रयोजन देने का गुरुतर दायित्व निबाहते हैं। माना कि सज्जन को सत्ता में बैठे मदांध लोग तिनके के समान समझते हैं। लेकिन भगवान श्रीराम तिनकों से ऐसी रस्सी बनाना जानते हैं कि जो सत्ता के मदांध और मतवाले हाथी को बाँध सके। राम लोक संग्रह करते हैं। एकनाथ ने एकनाथी भागवत में कहा है : अभेद-भक्ति, वैराग्य और ज्ञान का स्वयं आचरण करके उसी मार्ग पर दूसरों को ले आने का नाम ही लोकसंग्रह है। राम के गुरुत्वाकर्षण का यही कारण है। वे भाषण या उपदेश से नहीं प्रबोधते, आचरण का आदर्श रखते हैं। राम के नाम पर कोई गीता नहीं है, वे अपने जिए हुए से शिक्षित और दीक्षित करते हैं, करते आए हैं।■

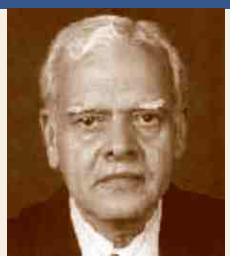

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ ग़ज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

भगवत्गीता में अर्जुन व श्रीकृष्ण के बीच हुए संवाद में सूक्ष्म दार्शनिक सत्य प्रगट होता है। योगवशिष्ठ में श्रीराम व गुरु वशिष्ठ का संवाद सरल वाक्य-विन्यास लिया है। वहीं अष्टावक्र गीता में राजा जनक व गुरु अष्टावक्र का वार्तालाप सूक्ष्म सत्य पर चिंतन स्वरूप है। ये कृतियाँ चिंतन को उस उच्च स्तर तक ले जाती हैं जहाँ सिद्धि ब्रह्म याने चेतना से परिचय कराती है। भगवत्गीता में अर्जुन युवावस्था का, योगवशिष्ठ में श्रीराम बाल्यावस्था का और अष्टावक्र गीता में राजा जनक प्रौढ़ावस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। फलतः ये कृतियाँ जीवन की हर अवस्था को आत्मसात् करती हुई एक समान सिद्धि तक ले जाती हैं, ताकि मात्र सत् ही प्रकट होकर और असत् अलग से चिन्हित होकर शुद्ध चेतना से हमारे जीवन को देदीप्यमान कर सके। आज हम अपनी प्रत्येक अवस्था में चिंतन द्वारा सत्य की खोज या शान्ति की प्राप्ति या फिर माया व भ्रम की गहरी परतों का उन्मूलन करने का प्रयास करते हैं। यह चिंतन भी एक स्वतंत्र व स्पष्ट संवाद बन जाता है जहाँ हमारा भ्रमित किन्तु विचारशील मन शून्य का प्रतीक बना हमारी अंतरात्मा याने अनंत चेतना से प्रश्न कर संवाद का आरंभ करता है। देखने, समझने व सोचने में सक्षम हमारा शरीर अपने मन के सारे विचारों के मलबे को चिंतन की प्याली में ऊँड़ेलता है और अपने अंतः से हुए संवाद की ऊष्मा में मथ जाने का इंतजार करता है। मैंने प्रयास किया है कि यह संवाद मेरे प्रबुद्ध पाठकों तक पहुँचे ताकि हर मानवमन शुद्ध चेतना की सिद्धि की ओर अग्रसर होने में अपनी सक्षमता का आभास कर सके। - **ले.**

PART 2

Thus it is the real element that is responsible for the creation. The unreal alone cannot create the universe.

इस तरह सत के तत्व को ही सृष्टि के निर्माण का दायित्व प्राप्त है। मात्र असत सृष्टि को निर्मित नहीं कर सकता।

Hence, the creator of the universe has to be only real and not the unreal. This real alone imparts its part to the unreal to form every thing.

अतः सृष्टि निर्माण करने वाला सत ही हो सकता है असत नहीं। वही सत अपने अंश को वितरित कर असत के साथ सब कुछ निर्मित कर सकता है।

And because real has no end, it has no form because form goes on changing. The creator of universe is thus formless and His field of action is also infinite.

और चूंकि सत का अन्त नहीं है अतः उसका कोई रूप भी नहीं हो सकता क्योंकि रूप तो बदलता रहता है। अतः सृष्टि का निर्माता निराकार है और उसका कार्य क्षेत्र भी अंतहीन है।

Part of any formless has to be formless; hence whatever part of real merges with the unreal is also formless. Hence soul is also formless.

निराकार का अंश निराकार ही होगा, अतः जो भी सत का अंश असत में आता है वह निराकार ही होगा। अतः आत्मा भी निराकार है।

It is difficult to understand that formless, but its existence can be experienced through cause, effect and causation.

उस निराकार को समझना कठिन है परन्तु उसके अस्तित्व को कारण, प्रभाव और वह जो कारण को उत्पन्न करता है उससे अनुभव किया जा सकता है।

In this universe the part of real exists in every thing we perceive for without the real part in it everything is unmanifest. The real is formless and unreal does not exist by itself.

इस सृष्टि में सत का अंश हर द्रश्य (असत) चीज में है क्योंकि बिना सत के अंश के सभी कुछ अव्यक्त है। सत निराकार है व असत का स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं है।

The unreal with its real part is manifest and our senses tell us about its existence; whereas real even as a part in unreal remains unmanifest and its existence can only be experienced by the mind-eye.

असत अपने सत के अंश के कारण व्यक्त है और हमारी

> जहाँ पथ अंतहीन है वहाँ लक्ष्य की ओर बढ़ता हर कदम लक्ष्य को ही दूर ले जाता है क्योंकि उसे तो अनंत की दूरी बनाये रखना होता है।

ज्ञानेन्द्रियाँ उसके अस्तित्व का बोध कराती हैं। जबकि सत असत के साथ होकर भी अव्यक्त ही रहता है और उसके अस्तित्व का अनुभव ज्ञानचक्षु से ही किया जा सकता है।

Part of real means part of that Brahman which remains full even when full is taken out of it.
सत के अंश से तात्पर्य उस ब्रम्ह से है जिसकी पूर्णता से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण बना रहता है।

Mother who delivers a child remains full even when full is born out of her and therefore she is worshipped as a Brahman.
बच्चे को जन्म देनेवाली माँ की पूर्णता में से पूर्ण के जन्म के बाद भी पूर्ण को ही बनी रहती है और इसलिये वह ब्रह्म की तरह पूजनीय है।

The smallest part of such full will also be full. Hence the soul being part of the Brahman remains full.
ऐसे पूर्ण का लघुत्तम अंश पूर्ण ही होता है। अतः आत्मा ब्रह्म का अंश होकर भी पूर्ण होती है।

Hence, as long as unreal has this part of real in it, it is to be respected for it appears to be fully real.
अतः जब तक असत में सत का अंश है, वह आदरणीय है क्योंकि वह पूर्ण सत-सा ही प्रतीत होता है।

For as small fragment of light tries to cover the entire darkness, similarly the real provides reality to the unreal in all possible way.
क्योंकि जैसे प्रकाश का एक अंश संपूर्ण अंधकार में सब ओर फैलने का प्रयास करता है, उसी प्रकार सत असत को हर प्रकार से वास्तविकता प्रदान करने की कोशिश करता है।

To realise effectiveness of the real, the craze for unreal should not totally eclipse the real for if a lamp is covered by black soot its light gets imprisoned.
सत के अंश को प्रभावशाली जानने के लिये असत की लालस से सत को पूर्णतया ढ़क जाने नहीं देना चाहिये क्योंकि दीप को काली काजल से ढ़क देने से उसका प्रकाश कैद हो जाता है।

Child at the time of its birth resembles Brahman for the real part enshirned in him is fully alert. But as she lives the soot of unreality go on covering her.
जन्म के समय शिशु ब्रह्म का स्वरूप होता है क्योंकि उसमें विद्यमान सत पूर्णतः सचेत होता है। परन्तु जैसे-जैसे वह जीता है, असत की कालिख उसे ढ़ँकने लगती है।

Those who retain or otherwise regain the purity of their soul so as to maintain the fullness that of Brahman, merge their soul with the Brahman and attain immortality.
वे जो अपनी आत्मा की शुद्धता को कायम रखते हैं या फिर से अपनी आत्मा की पवित्रता बना लेते हैं, ब्रह्म की पूर्णता को प्राप्त करने में सफल होते हैं, वे अपनी आत्मा को ब्रह्म में मिला पाते हैं और मोक्ष पाते हैं।

It is difficult to find answer to question of merging of the soul with Brahman because where path is endless; our every advance towards the goal shifts the goal further away for it has to maintain the infinite distance.
आत्मा के परमात्मा में मिलने के प्रश्न का उत्तर पाना कठिन है क्योंकि जहाँ पथ अंतहीन है वहाँ लक्ष्य की ओर बढ़ता हर कदम लक्ष्य को ही दूर ले जाता है क्योंकि उसे तो अनंत की दूरी बनाये रखना होता है।

Removal of infinity from infinity only results in infinity.
अनंत से अनंत निकालने से अनंत ही बचता है।

Real is forever real; it cannot be created or destroyed. Yet it has the creative as well as destructive power.
सत हमेशा सत ही रहता है, वह न तो निर्मित किया जा

सकता है और न ही नष्ट। फिर भी उसमें निर्माण व नाश करने की क्षमता होती है।

Unreal is always decaying and its creation is only illusion. Its accumulation is also not possible.
असत तो हमेशा नाशवान रहता है और उसका निर्माण मात्र भ्रम है। उसका संचय भी संभव नहीं है।

Hence mind has to concentrate on all that is real, for the unreal misleads it and diverts it from the real goal.
अतः वह सब जो सत है उस पर मन को ध्यान केन्द्रित करना है, क्योंकि असत उसे पथभ्रष्ट करता है और उसे वास्तविक लक्ष्य से गुमराह करता है।

Hence the mind that should have been most tranquil becomes agitated for it is unaware of the deep-seated peace that the soul actually aspires.
फलतः मन जो कि अनंत शांति का हकदार है, वह मचल जाता है क्योंकि वह उस अनंत शांति को नहीं पहचान पाता जिसकी वास्तविक चाह आत्मा को होती है।

Know that it is the inner self that has placed real and unreal before you. To see the unreal you have the body-eye and to visualize the real you have the mind-eye.
ज्ञात हो कि अंतरात्मा ने ही सत व असत को तुम्हारे सन्मुख रखा है। असत को देखने शरीर की आँखें हैं और सत को जानने ज्ञान-चक्षु तुम्हारे पास हैं।

Focus the mind-eye on the objects seen by the body-eye and there by penetrate deep into the inner soul of the objects perceived and ultimately discover the real.
शरीर की आँखों से दिखनेवाली चीजों पर ज्ञान-चक्षु केन्द्रित करो और इस तरह दिखनेवाली चीजों के अंतः में बसी अंतरात्मा के दर्शन लो और अंततः सत्य को खोज निकालो।

With this concentration see the creator in all creations and every created will appear as the creator.
इसी मनन से ईश्वर की सारी कृतियों को देखो और तब सारी कृतियाँ ईश्वर का स्वरूप लगने लगेंगी।

The universe around you is unreal but the core has the real self-enshrined in every speck of creation.
तुम्हारे चारों ओर फैला ब्रह्मांड असत है परन्तु ईश्वर की कृति के प्रत्येक अंश के केन्द्र में सत ही स्थपित है।

Every unreal is fragile and suffers, decays and changes into nothingness. Thus when everything decays, the core --- the inner self --- alone remains.
हर असत नष्टवान हैं और सड़कर शून्य में परिवर्तित होना झेलता है। इस तरह जब सब कुछ सड़ जाता है, अंतरात्मा शेष बचती है।

Life is a process in which the unreal fights the core and destroys itself but leaves the shining innerself, allowing the real to glitter with full brilliance.
जीवन वह उपक्रम है जिसमें असत अंतः से संघर्ष करता है और स्वयं तो नष्ट होता है पर अंतः को चमकता छोड़ जाता है, जिससे सत पूर्ण रोशनी के साथ दमक उठता है।

So discard not the life and its unrealities including pleasure and pain it gives and sorrows and happiness it brings. With its experiences give new luster to the inner self.
अतः जीवन और इसमें निहित असत से मिली प्रसन्नता व पीड़ा तथा प्राप्त हुए सुख व दुख का तिरस्कार मत करो। उसके अनुभवों से अंतरात्मा को नई चमक प्रदान करो।

The experiments that the instincts perform in the cauldrons of unrealities churn the pairs of opposites as the rivers does with the pebbles till their surface becomes smooth.
प्रवृत्तियाँ जो असत के पात्र में प्रयोग करती हैं, वे विपरीत-द्वयों को मथ डालती है जैसे नदियाँ कंकड़ों के साथ करती हैं जब तक कि वे चिकने नहीं हो जाते।

The pebbles hit the banks and rub against each other in the gushing waters of the river and thus the instincts too get rid of their hurting roughness.
कंकड़ किनारों से टकराते हैं और नदी में उफनते जल में आपस में घर्षण करते हैं और इसी तरह प्रवृतियाँ भी अपनी चुभनेवाली कठोरता से मुक्ति पाती हैं।

क्रमशः

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

पढ़े-लिखे मूर्ख

किसी नगर में चार ब्राह्मण रहते थे। उनमें खासा मेल-जोल था। बचपन में ही उनके मन में आया कि कहीं चलकर पढ़ाई की जाए।

अगले दिन वे पढ़ने के लिए कन्नौज नगर चले गए। वहां जाकर वे किसी पाठशाला में पढ़ने लगे। बारह वर्ष तक जी लगाकर पढ़ने के बाद वे सभी अच्छे विद्वान हो गए।

अब उन्होंने सोचा कि हमें जितना पढ़ना था पढ़ लिया। अब अपने गुरु की आज्ञा लेकर हमें वापस अपने नगर लौटना चाहिए। यह निर्णय करने के बाद वे गुरु के पास गए और आज्ञा मिल जाने के बाद पोथे संभाले अपने नगर की ओर रवाना हुए।

अभी वे कुछ ही दूर गए थे कि रास्ते में एक तिराहा पड़ा। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि आगे के दो रास्ते में से कौन-सा उनके अपने नगर को जाता है। अक्ल कुछ काम न दे रही थी। वे यह निर्णय करने बैठ गए कि किस रास्ते से चलना ठीक होगा। अब उनमें से एक पोथी उलटकर यह देखने लगा कि इसके बारे में उसमें क्या लिखा है।

संयोग कुछ ऐसा था कि उसी समय पास के नगर में एक बनिया मर गया था। उसे जलाने के लिए बहुत से लोग नदी की ओर जा रहे थे। इसी समय उन चारों में से एक ने पोथी में अपने प्रश्न का जवाब भी पा लिया। कौन-सा रास्ता ठीक है कौन-सा नहीं इसके विषय में उसमें लिखा था, 'महाजनो येन गतः स पंथा।'

किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि यहां महाजन का अर्थ क्या है और किस मार्ग की बात की गई है। श्रेणी या कारवां बनाकर निकलने के कारण बनियों के लिए महाजन शब्द का प्रयोग तो होता ही है, महान व्यक्तियों के लिए भी होता है, यह उन्होंने सोचने की चिंता नहीं की। उस पंडित ने कहा, 'महाजन लोग जिस रास्ते जा रहे हैं उसी पर चले', और वे चारों श्मशान की ओर जाने वालों के साथ चल दिए।

> अभी वे कुछ ही दूर गए थे कि रास्ते में एक तिराहा पड़ा। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि आगे के दो रास्ते में से कौन-सा उनके अपने नगर को जाता है। अक्ल कुछ काम न दे रही थी।

श्मशान पहुंच कर उन्होंने वहां एक गधे को देखा। एकांत में रहकर पढ़ने के कारण उन्होंने इससे पहले कोई जानवर भी नहीं देखा था। एक ने पूछा, 'भई, यह कौन सा जीव है?'

अब दूसरे पंडित की पोथी देखने की बारी थी। पोथे में इसका भी समाधान था। उसमें लिखा था।

'उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे, शत्रुसंकटे।
राद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति सः बांधवः।'

बात सही भी थी, बंधु तो वही है जो सुख में, दुख में, दुर्भिक्ष में, शत्रुओं का सामना करने में, न्यायालय में और श्मशान में साथ दे।

उसने यह श्लोक पढ़ा और कहा, 'यह हमारा बंधु है।' अब इन चारों में से कोई तो उसे गले लगाने लगा, कोई उसके पांव पखारने लगा।

अभी वे यह सब कर ही रहे थे कि उनकी नजर एक ऊंट पर पड़ी। उनके अचरज का ठिकाना न रहा। वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि इतनी तेजी से चलने वाला यह जानवर है क्या बला।

इस बार पोथी तीसरे को उलटनी पड़ी और पोथी में लिखा था, धर्मस्य त्वरिता गतिः। धर्म की गति तेज होती है। अब उन्हें यह तय करने में क्या रुकावट हो सकती थी कि धर्म इसी को कहते हैं। पर तभी चौथे को सूझ गया एक रटा हुआ वाक्य, इष्टं धर्मेण योजयेत। प्रिय को धर्म से जोड़ना चाहिए।

अब क्या था। उन चारों ने मिल कर उस गधे को ऊंट के गले से बांध दिया।

अब यह बात किसी ने जाकर उस गधे के मालिक धोबी से कह दी। धोबी हाथ में डंडा लिए दौड़ा हुआ आया। उसे देखते ही ये वहां से चंपत हो गए।

वे भागते हुए कुछ ही दूर गए होंगे कि रास्ते में एक नदी पड़ गई। सवाल था कि नदी को पार कैसे किया जाए। अभी वे सोच-विचार कर ही रहे थे कि नदी में बहकर आता हुआ पलाश का एक पत्ता दीख गया। संयोग से पत्ते को देखकर पत्ते के बारे में जो कुछ पढ़ा हुआ था वह एक को याद आ गया। आगमिष्यति यत्पत्रं तत्पारं तारयिष्यति।

आने वाला पत्र ही पार उतारेगा।

अब किताब की बात गलत तो हो नहीं सकती थी। एक ने आव देखा न ताव, कूद कर उसी पर सवार हो गया। तैरना उसे आता नहीं था। वह डूबने लगा तो एक ने उसको चोटी से पकड़ लिया। उसे चोटी से उठाना कठिन लग रहा था। यह भी अनुमान हो गया था कि अब इसे बचाया नहीं जा सकता। ठीक इसी समय एक-दूसरे को किताब में पढ़ी एक बात याद आ गई कि यदि सब कुछ हाथ से जा रहा हो तो समझदार लोग कुछ गवां कर भी बाकी को बचा लेते हैं। सब कुछ चला गया तब तो अनर्थ हो जाएगा।

वह सोचकर उसने उस डूबते हुए साथी का सिर काट लिया।

अब वे तीन रह गए। जैसे-तैसे बेचारे एक गांव में पहुंचे। गांव वालों को पता चला कि ये ब्राह्मण हैं तो तीनों को तीन गृहस्थों ने भोजन के लिए न्यौता दिया। एक जिस घर में गया उसमें उसे खाने के लिए सेवई दी गई। उसके लम्बे लच्छों को देखकर उसे याद आ गया कि दीर्घसूत्री नष्ट हो जाता है, दीर्घसूत्री विनश्यति। मतलब तो था कि दीर्घसूत्री आ आलसी आदमी नष्ट हो जाता है पर उसने इसका सीधा अर्थ लंबे लच्छे वाला किया और सेवई के लच्छों पर घटाकर सोच लिया कि यदि उसने इसे खा लिया तो वह स्वयं नष्ट हो जाएगा। वह खाना छोड़कर चला आया।

अब वे तीन रह गए। जैसे-तैसे बेचारे एक गांव में पहुंचे। गांव वालों को पता चला कि ये ब्राह्मण हैं तो तीनों को तीन गृहस्थों ने भोजन के लिए न्यौता दिया। एक जिस घर में गया उसमें उसे खाने के लिए सेवई दी गई। उसके लम्बे लच्छों को देखकर उसे याद आ गया कि दीर्घसूत्री नष्ट हो जाता है, दीर्घसूत्री विनश्यति।

दूसरा जिस घर में गया था वहां उसे रोटी खाने को दी गई। पोथी फिर आड़े आ गई। उसे याद आया कि अधिक फैली हुई चीज की उम्र कम होती है, अतिविस्तार विस्तीर्ण तद् भवेत् न चिरायुषम्। वह रोटी खा लेता तो उसकी उम्र घट जाने का खतरा था। वह भी भूखा ही उठ गया।

तीसरे को बड़ा खाने को दिया गया। उसमें बीच में छेद तो होता ही है। उसका ज्ञान भी कूदकर उसके और बड़े के बीच में आ गया। उसे याद आया, छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति। छेद के नाम पर उसे बड़े का ही छेद दिखाई दे रहा था। छेद का अर्थ भेद का खुलना भी होता है यह उसे मालूम ही नहीं था। वह बड़े खा लेता तो उसके साथ भी अनर्थ हो जाता। बेचारा वह भी भूखा रह गया।

लोग उनके ज्ञान पर हंस रहे थे पर उन्हें लग रहा था कि वे उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। अब वे तीनों भूखे-प्यासे ही अपने अपने नगर की ओर रवाना हुए।

यह कहानी सुनाने के बाद स्वर्णसिद्धि ने कहा, तुम भी दुनियादार न होने के कारण ही इस आफत में पड़े। इसीलिए मैं कह रहा था शास्त्रज्ञ होने पर भी मूर्ख मूर्खता करने से बाज नहीं आते।

उसकी बात सुनकर घनचक्कर ने कहा, 'यार, क्यों ऐसी बात करते हो। भाग्य पलटा खा जाए तो बड़े-बड़े गच्चा खा जाते हैं और वहीं साथ देने लगे तो गधे भी गुलछर्रा उड़ाते हैं। सुना नहीं है तुमने, यह जो सिर पर है वह शतबुद्धि है, जो लटका हुआ है वह सहस्रबुद्धि है और यहां मैं हूं एकबुद्धि जो इस निर्मल जल में क्रीड़ा कर रहा हूं।'

सुवर्णसिद्धि की समझ में यह बात आई नहीं। उसने पूछा तो घनचक्कर ने एक कहानी सुनाई।■

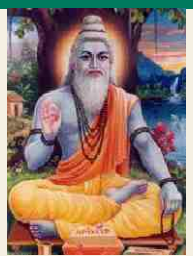

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

अभिमन्यु का वध

जैसा कि पहले तय हुआ था, पांडवों की सेना अभिमन्यु के पीछे-पीछे चली और जहां से व्यूह तोड़कर अभिमन्यु अंदर घुसा था, वहीं से व्यूह के अंदर प्रवेश करने लगी। यह देख सिंधु देश का पराक्रमी राजा जयद्रथ जो धृतराष्ट्र का दामाद था, अपनी सेना को लेकर पांडव-सेना पर टूट पड़ा। जयद्रथ के इस साहसपूर्ण काम और सूझ को देखकर कौरव-सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। कौरव-सेना के सभी वीर उसी जगह इकट्ठे होने लगे जहां जयद्रथ पांडव-सेना का रास्ता रोके हुए खड़ा था। शीघ्र ही टूटे मोरचों की दरारें भर गईं। जयद्रथ के रथ पर चांदी का शूकर ध्वज फहरा रहा था। उसे देख कौरव सेना की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसमें नया उत्साह भर गया। व्यूह को भेदकर अभिमन्यु ने जहां से रास्ता किया था, वहां इतने सैनिक आकर इकट्ठे हो गये कि व्यूह फिर पहले जैसा ही मजबूत हो गया।

व्यूह के द्वार पर एक तरफ युधिष्ठिर, भीमसेन और दूसरी ओर जयद्रथ में युद्ध छिड़ गया। युधिष्ठिर ने जो भाला फेंककर मारा तो जयद्रथ का धनुष कटकर गिर गया। पलक मारते-मारते जयद्रथ ने दूसरा धनुष उठा लिया और दस बाण युधिष्ठिर पर छोड़े। भीमसेन ने बाणों की बौछार से जयद्रथ का धनुष काट दिया, रथ की ध्वजा और छतरी को तोड़-फोड़ दिया और रणभूमि में गिरा दया। उस पर भी सिंधुराज नहीं घबराया। उसने फिर एक दूसरा धनुष ले लिया और बाणों से भीमसेन का धनुष काट डाला। पलभर में ही भीमसेन के रथ के घोड़े ढेर हो गये। भीमसेन को लाचार हो रथ से उतरकर सात्यकि के रथ पर चढ़ना पड़ा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता और बहादुरी से ठीक समय व्यूह की टूटी किलेबंदी को फिर से पूरा करके मजबूत बना दिया उससे पांडव बाहर ही रह गये। अभिमन्यु व्यूह के अंदर अकेला रह गया। पर अकेले अभिमन्यु ने व्यूह के अंदर ही कौरवों की उस विशाल सेना को तहस-नहस करना शुरू कर दिया। जो भी उसके सामने आता, खत्म हो जाता था।

दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभी बालक था, पर उसमें वीरता की आभा फूट रही थी। उसको भय छू तक नहीं गया था। अभिमन्यु की बाण-वर्षा से व्याकुल होकर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे तो वीर लक्ष्मण अकेला जाकर अभिमन्यु से भिड़ पड़ा। बालक की इस निर्भयता को देख

> “व्यूह को भेदकर अभिमन्यु ने जहां से रास्ता किया था, वहां इतने सैनिक आकर इकट्ठे हो गये कि व्यूह फिर पहले जैसा ही मजबूत हो गया।”

भागती हुई कौरव सेना फिर से इकट्ठी हो गई और लक्ष्मण का साथ देकर लड़ने लगी। सबने एक साथ ही अभिमन्यु पर बाण वर्षा कर दी, पर वह अभिमन्यु पर इस प्रकार लगी जैसे पर्वत पर मेह बरसता हो।

दुर्योधन-पुत्र अपने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय देता हुआ वीरता से युद्ध करता रहा। अंत में अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केंचुली से निकले सांप की तरह मचकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से जा लगा। सुंदर नासिका और सुंदर भौंहोवाला, चमकीले घुंघराले केश और जगमगाते कुंडलों से विभूषित वह वीर बालक भाले की चोट से तत्काल मृत होकर गिर पड़ा।

यह देख कौरव-सेना आर्त्तस्वर में हाहाकार कर उठी।

'पापी अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो।' दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा और द्रोण, अश्वत्थामा, वृहदबल, कृतवर्मा आदि छह महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया।

द्रोण ने कर्ण के पास आकर कहा- 'इसका कवच भेदा नहीं जा सकता। ठीक से निशाना बांधकर इसके रथ के घोड़ों की रास काट डालो और पीछे की ओर से इस पर अस्त्र चलाओ।'

सूर्यकुमार कर्ण ने यही किया। पीछे की ओर से बाण चलाये गये। अभिमन्यु का धनुष कट गया। घोड़े और सारथी मारे गये। वह रथ विहीन हो गया। धनुष भी न रहा। फिर भी वह वीर बालक ढाल-तलवार लिये शान से खड़ा रहा। उस समय ऐसा लगता था मानो क्षत्रियोचित शूरता का वह मूर्त्तस्वरूप हो। लड़ाई के मैदान में ढाल-तलवार लिये खड़े अभिमन्यु ने रण-कौशल का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी वीर विस्मय में पड़ गये। अभिमन्यु बिजली की तरह तलवार घुमाता रहा और जो भी उसके पास आता उस पर आक्रमण करके उसकी खासी अच्छी खबर लेता। वह तलवार इस फुर्ती से चलाता था कि ऐसा मालूम होता था मानो वह जमीन पर खड़ा ही न हो और आकाश में ही युद्ध कर रहा हो। इतने में आचार्य द्रोण ने अभिमन्यु की तलवार काट डाली। साथ ही कर्ण ने कई तेज बाण एक साथ चालकर उसकी ढाल के टुकड़े कर दिये।

तुरंत ही अभिमन्यु ने टूटे रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे घुमाने लगा। ऐसा करते हुए वह ऐसा लगता था मानो सुदर्शन चक्र लिये हुए साक्षात भगवान नारायण हों। रथ के पहिये की धूल लग जाने के कारण उसके गौर-वर्ण शरीर की स्वाभाविक शोभा और बढ़ गई।

इस समय अभिमन्यु भयानक युद्ध कर रहा था। यह देख सारी सेना एक साथ उस पर टूट पड़ी। उसके हाथ का पहिया

जो सच्चे वीर थे, यह देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। आकाश में जो पक्षी मंडरा रहे थे, वे चीखने लगे, मानो पुकार-पुकार कर कह रहे हों कि 'यह धर्म नहीं! धर्म नहीं!'

चूर-चूर हो गया। इसी बीच दुःशासन का पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर झपटा। इस पर अभिमन्यु ने भी पहिया फेंककर गदा उठा ली और दोनों आपस में भिड़ पड़े। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरे पर गदा का भीषण वार करते हुए दोनों ही राजकुमार आहत होकर गिर पड़े। दोनों ही हड़बड़ाकर उठने लगे दुःशासन का पुत्र जरा पहले उठ खड़ा हुआ। अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि दुःशासन के पुत्र ने उसके सिर पर जोर से गदा प्रहार किया। यों भी अभिमन्यु अब तक कईयों से अकेला लड़ते हुए घायल हो चुका था और थककर चूर हो रहा था। गदा की मार पड़ते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

संजय ने धृतराष्ट्र को इस घटना का हाल सुनाते हुए कहा- 'सुभद्रा के पुत्र के कौरव-सेना में घुसने पर सेना की ऐसी दुर्दशा हो गई है जैसे हाथी के घुस आने पर कदली-वन की होती है। ऐसे इस वीर को कई लोगों ने एक साथ आक्रमण करके मार डाला और मरे हुए अभिमन्यु के शरीर को घेरकर आपके बंधु-बांधव एवं साथी जंगली व्याधों की भांति नाचने-कूदने व आनंद मनाने लगे।' जो सच्चे वीर थे, यह देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। आकाश में जो पक्षी मंडरा रहे थे, वे चीखने लगे, मानो पुकार-पुकार कर कह रहे हों कि 'यह धर्म नहीं! धर्म नहीं!'

अभिमन्यु के वध पर कौरव वीरों के आनंद का कोई ठिकाना न रहा। सभी वीर सिंहनाद करने लगे, किंतु धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को इससे बड़ा क्रोध आया।

वह बोला- 'तुम लोगों ने यह उचित नहीं किया। युद्ध-धर्म से अनभिज्ञ क्षत्रियों! चाहिए तो यह था कि तुम लोग लज्जा से सिर झुकाते। उल्टा, सिंहनाद कर रहे हो! तुमने यह भारी पाप किया है और आगे के लिये एक भारी संकट मोल ले लिया है। इस पर ध्यान न देकर मूर्ख व नासमझ लोगों की भांति आनंद मना रहे हो! धिक्कार है तुम्हें!' यह कहते-कहते युयुत्सु ने अपने हथियार फेंक दिये और मैदान से चल दिया।

युयुत्स धर्म-प्रिय था। उसकी बातें कौरवों को क्यों पसंद आने लगीं।■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेल: prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

सूर्या विवाह

(ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८५)

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्या ऽश्विना तवा प्र वहताम् रथेन
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।२६।

तुझे लेकर चलें पूषा
कर ग्रहण करके
अश्वि रथ में बिठा पहुचाएं तुझे
स्वामिनी गृह की बनो तुम वहाँ जाकर
स्ववश कारिणि
बुद्धि सम्मत तुम वचन बोलो।

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन गृहे गार्हपत्याय जागृहि
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाऽधा जिन्री विदथमा वदाथः।२७।

वृद्धि हो, समृद्धि हो, संतान प्रिय सबकी यहाँ
तुम रहो जागृत सदा ही इस भवन
बसो तुम अर्धांग पति के निरन्तर
वचन बोलो सदा पारमार्थिक वृद्ध होने पर।

नील लोहितं भवति कृत्याशक्तिर्व्यज्यते
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बंधेषु बद्ध्यते।२८।

लाल नीली कभी वह होती
ध्वंसकारी मति मचलती है
लोग आ जाते कुशलता पूछने वाले
निकट के सम्बन्ध सूचक
भवन पति आबद्ध होता तब
है बंधनों में।

परा देहि शामुल्यम् ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम्।२९।

वस्त्र त्यागो मलिन अपनी देह से
दान दो सद्ब्राह्मणों को प्रायश्चित में
जा चुकी है दूर कृत्या मलिन ज्वाला
और बन पत्नी बसी यह देह पति की।

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमंग्मभिधित्स्ते।३०।

श्री रहित, रोगादियुत ही रहे पति
वधू के वह स्वयं धारे यदि वसन
अशुचिता तो पापमूलक है सदा।

ये वध्वश्चन्तुं वहतुम् यक्ष्मा यन्ति जनादनु
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत् आगतः।३१।

वधू अथवा वधू के सम्बन्धियों से
व्याधियाँ वर को मिली जो यक्ष्मा आदिक
देवता यज्ञादि पोषक
उन्हें ले जाएँ वहाँ
आई जहां से हों वे मूलतः।

क्रमशः

मानिक बन्द्योपाध्याय

(९ मई १९०८ - ३ दिसम्बर १९५६)

आधुनिक बांग्ला कथा साहित्य के अग्रणियों की पहली पंक्ति में अन्यतम। लगातार बीमारी तथा अभाव से जूझते हुए कुल ४८ साल की उम्र में ३६ उपन्यास एवम् १७७ छोटी कहानियाँ लिखीं। अपनी रचनाओं में जटिल मानव मनोविज्ञान एवम् ग्रामीण जीवन के यथार्थ की गहराई से पड़ताल की। आज भी उनकी साधारण कहानियाँ पाठक को आश्चर्यचकित कर देती हैं। उनकी कहानियों के चरित्रों की पहचान वे अपने आसपास के लोगों में सहजता से करने लगते हैं। उनकी रचनाएँ अद्‌भुत भाषाशिल्प एवम् वर्णन शैली से सहजता से संप्रेषण कर पाती हैं। 'पद्मानदीर माँझी' उनके प्रतिष्ठित उपन्यासों में सर्वाधिक चर्चित रही है।

अनुवाद

सामञ्जस्य

बांग्ला से हिन्दी अनुवाद : गंगानन्द झा

भीतर और बाहर से गम्भीर होकर उस दिन प्रमथ घर लौटा। बहुत दिनों के बाद आज वह गहरी शान्ति महसूस कर रहा है, परम मुक्ति का स्वाद आज उसे मिला है। सोचविचार कर, भावना चिन्ता कर मन स्थिर कर पाने के बाद ही आश्चर्यजनक रूप से उसका मन शान्त हो गया है।

आज दफ्तर में सारे दिन उसने कोई काम नहीं किया है, कर ही नहीं पाया। बहुत से जरूरी काम थे। अन्य दिन ऑफिस के काम में डूबकर अन्दर की अकबकी से कुछ हद तक मुक्ति पा सका है। काम जितनी अधिक जिम्मेदारी और महत्व के रहे हैं, उतनी ही अधिक गहराई से वह अपने आपको भूल पाया है। कर्तव्यपालन की तत्परता उसके अन्दर हमेशा से ही काफी जोरदार रही है, अभ्यास पुराना है।

लेकिन काम भी हर वक्त अच्छा नहीं लगता। बीच-बीच में हठात् काम के प्रति प्रबल उत्साह कैसे तो ठंडा पड़कर गहरी उदासी और अवसाद छा जाता हैं। ऐसा भी लगता है कि इस तरह जिया नहीं जा सकता। गीता की याद आई है, गीता के साथ जीवनयापन की अर्थहीनता। चार सालों के संघात, ग्लानिबोध, विरक्ति और हताशा के कवल से रिहाई पाने की चरम व्यवस्था उसने कर ली है। अब और उसे गीता के कारण संकीर्ण, स्वार्थप्रधान, आदर्शच्युत, श्रीहीन जीवनयापन नहीं करना पड़ेगा। बहुत बड़े, अतिपालनीय कर्तव्यपालन करने का गौरव भी उसे मिलेगा, आत्मविरोधी जीवनयापन से रिहाई भी पाएगा। केवल कपड़े-गहने, अच्छा खाना-पीना, अड्डेबाजी, सिनेमा और विरामहीन चाहत, मतान्तर, रूठना-मनाना लेकर ऊबना नहीं होगा। दो चार दिनों के भीतर ही आन्दोलन शुरू होगा। आन्दोलन में शामिल होकर वह जेल जाएगा। गीता की पकड़ से बाहर।

> *गीता को अच्छी तरह देख सुनकर विवाह करने की भूल उसकी थी, गीता को दण्ड देकर अपने मन की ज्वाला मिटाने जैसा अन्याय उसने कभी नहीं किया। अगर यह रास्ता नहीं सूझता तो हमेशा के लिए उसे आत्मविरोध भरा बन्दी का जीवन जीना पड़ता।*

कदाचित् गीता की अच्छी शिक्षा हो। नौकरी की माया न करते हुए, घर-संसार की बात नहीं सोचकर, उसकी सम्पूर्ण रूप से उपेक्षा कर देश के लिए उसका पति जेल जा सकता है। यह आघात, हो सकता है, उसको पूरी तरह बदल दे। उसके

प्रमथ को यह बात साफ-साफ समझ में आ गई कि उपदेश देकर गीता को बदल देने की कोशिश बेवकूफी थी। अपने को कितना हताश और निरुपाय पाकर वह गीता में उस तरह से संशोधन करने के तरीकों को अन्धे की तरह जकड़ कर रखे रहा था।

जेल में रहने की लम्बी अवधि में कदाचित् वह सोचना सीखेगी कि जीवन का कितना अधिक महत्व है। हल्के, स्वार्थपर और अर्थहीन जीवन के प्रति कदाचित् उसके मन में स्थाई रूप से वितृष्णा आ जाए। जेल से निकलने के बाद कदाचित् वह गीता के साथ सुखी हो सके, उनके बीच सामञ्जस्य स्थापित होगा। देश और समाज की बात सोचकर कदम-कदम पर टकराने के बदले कुछ कुछ काम और त्याग खुशी-खुशी स्वीकार करते हुए।

रास्ते पर चलते लोग आज उसे खुश लग रहे थे। उसकी तरह कहीं उन लोगों के जीवन में भी विरामहीन, प्रतिकारहीन संघर्ष स्थाई रोग-यन्त्रणा की तरह लगातार बनी हुई अशान्ति छाई हुई है कि नहीं? यह प्रश्न आज जैसे उसके मन से मिट गया था।

एक बात प्रमथ निश्चित रूप से जानता है। इस सम्बन्ध में अपने निकट कोई धोखाधड़ी नहीं है। देह-मन से इस तरह से उसके हल्का हो जाने का कारण और कुछ नहीं, गीता के हाथ से मुक्ति पाने की कल्पना ने ही उसे इस तरह भारमुक्त कर दिया है। इस बात को वह महत्व नहीं देता, इसके बारे में वह सोचता भी नहीं। मुक्तिलाभ की यह राह चुनने का एक पहलू और भी है। गीता को जीवन से निकालकर रिहाई पाने के बहुत से सहज, साधारण और इतर रास्ते हो सकते थे, लेकिन उसने उस तरह से मुक्ति पाने की चेष्टा नहीं की थी, न ही स्थिति का प्रतिकार करने के गलत उपाय अपनाए। पति और प्रेमी के कर्तव्य वह बराबर करता रहा है। गीता को अच्छी तरह देख सुनकर विवाह करने की भूल उसकी थी, गीता को दण्ड देकर अपने मन की ज्वाला मिटाने जैसा अन्याय उसने कभी नहीं किया। अगर यह रास्ता नहीं सूझता तो हमेशा के लिए उसे आत्मविरोध भरा बन्दी का जीवन जीना पड़ता। इस किस्म के गौरव का दावा तो वह कर सकता है।

घर में घुसते ही उसने अपने छोटे भाई सुमथ के शिशु बेटे को बारामदे पर असमय में सोया हुआ देखा। शादी के दो साल के अन्दर सुमथ को बेटा हुआ है। चार सालों से अधिक बीत जाने पर भी गीता को अभी तक एक सन्तान की माँ होने के लिए वह राजी नहीं करा पाया था। इरादा और भी पक्का हो गया प्रमथ का।

गीता घर में नहीं थी। ऑफिस से घर लौटने पर शायद ही कभी उसकी गीता से भेंट होती है। नहाने धोने, कपड़े बदलने के बाद सुमथ की पत्नी ने उसे नाश्ता दिया। उसका लटका हुआ चेहरा देखकर उसे माया हुई। उसने सुमथ से कहा, 'दादा का चेहरा बहुत सूखा हुआ देखा।'

सुमथ ने गम्भीरता से सर हिलाया, 'इतनी अशान्ति! दादा हैं, जो बर्दाश्त करते हैं,। मैं होता तो...'

'क्या करते?'

'घर से निकाल देता।'

'नहीं कर पाते, तुम भी तो दादा के भाई हो।'

प्रगटतः सुमथ हँसा, लेकिन मन से इस युक्ति को नहीं मान पाया। वह हँसा, पत्नी की इस घोषणा पर कि दादा की जगह पर होने पर वह भी गीता को नहीं निकाल पाता।

रात के लगभग आठ बजे गीता लौट आई। वह एक भड़कीली साड़ी पहने हुए थी। उसके चेहरे-मोहरे और चलने फिरने में खुशी का भाव छलक रहा था।

'जानते हो, कहाँ गई थी मैं?' बोलती बोलती सामने आकर प्रमथ का मुँह देखकर अपने ओठ टेढ़ा किया उसने, 'नाराज हुए हो?'

'नहीं, गुस्सा नहीं किया है मैंने। एक बात सोच रहा था, तुम्हारे ऊपर अब कभी भी गुस्सा नहीं करुँगा।'

'इसका मतलब?'

'कपड़े बदलकर शान्त होकर बैठो, बोलता हूँ।'

'ओ बाबा! तब तो कोई गम्भीर बात है।'

लेकिन उसकी नहीं कही गई बात को उसने कोई खास तवज्जुह नहीं दिया, यह बात प्रमथ समझ गया। शायद गीता ने मान लिया है कि प्रमथ कुछ उपदेश झाड़ेगा, व्याख्या करके कोई बात समझा देने की कोशिश करेगा। गीता के लौटकर आने में आधा घण्टा लगने पर इसी अनुमान की पुष्टि हुई। अगर वह मानती कि उसे कुछ नई बात कहनी है, तो इतनी देर कौतूहल दबाए रखना उसके लिए मुमकिन नहीं होता।

आज प्रमथ को यह बात साफ-साफ समझ में आ गई कि उपदेश देकर गीता को बदल देने की कोशिश बेवकूफी थी। अपने को कितना हताश और निरुपाय पाकर वह गीता में उस तरह से संशोधन करने के तरीकों को अन्धे की तरह जकड़ कर रखे रहा था, यह बात सोचने पर आसन्न मुक्ति का रूप और भी विराट हो उठा।

और यह सोचकर भी कि उसकी बातें सुनकर गीता किस तरह चौंक उठेगी, प्रमथ बहुत पुलकित हो रहा था।

लौट कर आने पर गीता इधर-उधर देखने के बाद टेबल पर रखी रंगीन जिल्द की एक किताब उठाकर सोने के कमरे की ओर बढ़ी। प्रमथ ने कुछ खास कहने की बात उसे कही थी, यह बात जैसे वह बिलकुल भूल गई थी। उसको पुकारते-पुकारते प्रमथ चुप हो गया। करीब पन्दरह मिनट वह चुपचाप बैठा रहा। उसके बाद शान्त मुद्रा में सोने के कमरे में गया।

'मैं कह रहा था।'

गीता अपने बिस्तर पर लेट गई थी। किताब रखकर उबासी लेते हुए उदासीन रूप से बोली, 'क्या कह रहे थे?'

प्रमथ नजदीक जाकर बिस्तर पर ही बैठा, उसने सारी बातें सम्भालकर कही, जोरदार, साफ भाषा में। लेकिन लगा नहीं कि गीता कहीं से चौंकी हो। बातों को उसने थोड़ा-सा भी महत्वपूर्ण समझा है या नहीं, इस सम्बन्ध में भी सन्देह लगा।

'ओ, यह बात। और मैं समझूँ कि तुम नाराज नहीं हो?'

'नाराजगी की क्या बात है इसमें?'

'मेरे कारण जेल जाओगे, फिर भी तुम कहते हो कि तुम नाराज नहीं हो। कभी डाँट कर कहोगे कि तुम नाराज नहीं हो।'

'तुम्हारे कारण जेल नहीं जा रहा हूँ, गीतू।'

'तो फिर किसके लिए? स्वदेशी बनकर जेल जाने के लिए ही तुमने तीन सौ रुपयों की नौकरी की और विवाह किया?'

'जेल जाओगे ना, खाक। ऐसा करके तुम मुझे कहना चाहते हो कि मैंने तुम्हारा जीना दूभर कर दिया है।' गीता की आँखें छलछला गईं। 'क्या दोष किया है मैंने? माफी माँगती हूँ। ऐसा क्यों करते हो?' प्रमथ अवाक् होकर उसकी ओर देखता रह गया। यह अभिनय है या बचपना। बचपना ही होगा। उसका स्वभाव ही ऐसा विकारग्रस्त है!

'तुम्हें कहकर क्या होगा? तुम नहीं समझोगी।'

'नहीं समझूँगी? क्या मैं नासमझ हूँ? बेवकूफ हूँ? या कि बदमाश हूँ?'

प्रमथ फिर कुछ नहीं बोला। शान्त, निर्विकार होकर चुपचाप बैठा रहा। इससे गीता का क्रोध और भी बढ़ गया। कुछ देर तक इकतरफा झगड़ा करती रहकर वह रोती रही। प्रमथ तब भी पत्थर की मूर्ति की तरह बैठा रहा, उसकी ओर घूम कर भी नहीं देखा।

सात दिनों के बाद प्रमथ और बहुत लोगों के साथ गिरफ्तार हुआ। मुकदमे के बाद उसे तीन साल की कारावास की सजा हुई।

जेल में प्रमथ का समय अकेले-अकेले बीतता रहा। बूढ़ी माँ, सुमथ और अन्य रिश्तेदार चिट्ठियां लिखते, बीच-बीच में मुलाकात करने भी आया करते। गीता न तो चिट्ठी लिखती, न मिलने ही आती। मुकदमा चलने के समय वह कोर्ट में आती थी, आहत विस्मय और तीखे अभियोग से भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती रहती। सुमथ से उसको जानकारी मिली कि मुकदमा खत्म होते ही गीता अपने पिता के पास ढाका चली गई है। यह बात प्रमथ की समझ में आती है, लेकिन मिलने के लिए एक बार भी क्यों नहीं आती? चिट्ठी क्यों नहीं लिखती?

उसका नाराज होना स्वाभाविक है, लेकिन क्या उसका मन इतना विकृत है कि नाराजगी किसी तरह कम नहीं होती, चिट्ठी के जवाब में कम से कम दो लाइन लिख पाने के लायक?

प्रमथ क्षुब्ध हुआ, उसका मन खराब हो गया। अगर उसके कारागार वरण करने की यही प्रतिक्रिया गीता के मन में हुई हो तो उसके हृदय और मन में किस परिवर्तन की आशा प्रमथ कर सकता है।

लेकिन जो भी हो, मुक्ति तो उसे मिली है। उसके आत्मविरोधी जीवन का अवसान हमेशा के लिए हो गया है। बाकी जीवन शान्ति से हो, अशान्ति से हो, सुख से हो या दुःख से हो, अपनी मतिगति और आदर्श के साथ सामञ्जस्य रखते हुए बीता पाएगा।

जेल में डेढ़ साल पूरा होने पर एक दिन हठात् गीता पास से एक अजीब सी चिट्ठी उसे मिली। चिट्ठी बहुत संक्षिप्त थी। गीता ने लिखा था : इतने दिनों तक चिन्ता करते-करते वह समझ पाई है कि प्रमथ और उसके मन में मेल नहीं रहने से वे लोग कभी सुखी नहीं हो सकेंगे। इसीलिए उसने निश्चय किया है कि अपने आपको ठोंक पीट कर प्रमथ के उपयुक्त करने के लिए कुछ दिनों तक एक शिक्षासदन में रहेगी। वह चिन्ता नहीं करे, यथासमय भेंट होगी।

प्रमथ बार-बार चिट्ठी पढ़ता रहा, उसकी बौखलाहट कम

प्रमथ नजदीक जाकर बिस्तर पर ही बैठा, उसने सारी बातें सम्भालकर कही, जोरदार, साफ भाषा में। लेकिन लगा नहीं कि गीता कहीं से चौंकी हो। बातों को उसने थोड़ा-सा भी महत्वपूर्ण समझा है या नहीं, इस सम्बन्ध में भी सन्देह लगा।

गीता की आवाज और भी पतली और भी तीखी हो गई, प्रमथ की बात पर वह झनझनाकर बज उठी, 'बदला कैसा? जेल की सजा नहीं काटने से तुम्हारे साथ घर कैसे करती? हमारे बीच सामञ्जस्य रहना चाहिए न।'

होने का नाम नहीं ले रही थी। शिक्षासदन? इस किस्म का शिक्षासदन कहाँ है, जहाँ औरतों को ठोंक पीटकर अपने पति के उपयुक्त करने की व्यवस्था है? साधना, भजन, जप-तप कर अपने सुधारने के लिए किसी साधु संन्यासी के आश्रम जाने की सूझ तो नहीं हुई है गीता में? या क्या गीता का दिमाग पूरी तरह बिगड़ गया है, पागलपन के आवेश में एक आबोल ताबोल चिट्ठी लिख डाला है गीता ने। अगर अपनी गलती समझ पाती गीता तो उतना ही काफी होता। आदर्शहीन जीवन की व्यर्थता का भान पाने, जिम्मेदारी का एहसास होने से प्रमथ खुद ही उसे आसानी से सुधार लेता।

मन में नाना किस्म की भावनाएँ घुमड़तीं, लेकिन एक नया आनन्द और उत्साह भी प्रमथ अनुभव करता। उसकी आशा पूरी तरह व्यर्थ नहीं हुई। आखिरकार गीता ने सोचना सीखा है, मन का मेल नहीं होने से वे लोग सुखी नहीं हो पाएँगे।

गीता ने अपना पता नहीं दिया था। प्रमथ ने उसके पिता के ढाका आवास के पते पर जवाब दिया। उसने लिखा, गीता ऐसा नहीं सोचे कि प्रमथ उसे बिलकुल अपने मन के अनुसार साँचे में ढालना चाहता है। कभी भी उसने गीता पर अपना अधिकार नहीं जताया है, कभी जताने की इच्छा भी नहीं हुई है उसकी। उनकी आपसी विरोधिता का अवसान होने पर ही वे लोग सुखी हो पाएँगे, इत्यादि बहुत सी बातें।

बिलकुल अन्त में उसने लिखा : शिक्षासदन का क्या नाम है, गीता ने किस शिक्षासदन में योगदान किया है? उस चिट्ठी का कोई जवाब नहीं आया। कुछ दिन बाद सुमथ के मुलाकात करने आने पर उससे उस विषय में पूछा। किन्तु सुमथ कोई खबर नहीं दे पाया। गीता ने अभी तक उन लोगों के पास कोई पत्र नहीं लिखा है।

'पता करूँ?'

प्रमथ ने सोच विचार कर कहा, 'नहीं, रहने दो।'

करीब चार महीने बाद हठात् कई एक और राजनैतिक बन्दियों के साथ प्रमथ को रिहा कर दिया गया। घर पहुँच कर दो दिनों तक उसने आराम किया और उसके बाद ढाका के लिए रवाना हो गया।

गीता के रायबहादुर पिता ने अत्यन्त गम्भीरता से उसका स्वागत किया, 'आओ। बैठो।'

'गीता लौटी नहीं है शिक्षासदन से?'

'किस शिक्षासदन से?'

'मुझे उसने लिखा था कि वह शिक्षासदन जा रही है। नाम पता कुछ भी नहीं लिखा है।'

राय बहादुर ने भौं सिकोड़ते हुए कहा, 'शिक्षासदन? वह तो जेल में है।'

'जेल में?'

'उस लड़की की बात मत पूछो, पागल की तरह जो भी मन में आया, भाषण देकर देशद्रोह के आरोप में छः महीने की जेल की सजा काट रही है। फाइन देकर मैं सँभाल सकता था, लेकिन वह कोर्ट में मैजिस्ट्रेट के सामने ऐसी-ऐसी बातें बोलने लगी', रायबहादुर ने मुँह से अद्‌भुत आवाज निकालते हुए कहा। प्रमथ को समझने में दिक्कत नहीं हुई कि यह आवाज अफसोस की आवाज है। पहले भी बहुत बार सुनी है उसने यह आवाज। 'तुम दोनो अच्छे मिले हो।'

फिर से रेल और स्टीमर की सवारी का चक्कर लगाना पड़ा। इस बार प्रमथ को लगता रहा कि पल-पल बीतना मुश्किल हो रहा है, रेल और स्टीमर बहुत धीमी गति से चल रहे हैं, समय बीत नहीं रहा है।

जेल में गीता को देखते ही वह समझ गया कि उसके चेहरे में बहुत परिवर्तन हो गया है। वह तो हमेशा की दुबली पतली रही है। लेकिन अभी बहुत कमजोर दिखती है। उसकी आँखों में चंचल दृष्टि की जगह उदास हँसी से भरी गम्भीरता है।

प्रमथ ने उलाहना देते हुए कहा, 'ख्वामख्वाह जेल आने की क्या जरूरत थी, गीतू? बदला लेने के लिए?'

गीता की आवाज और भी पतली और भी तीखी हो गई, प्रमथ की बात पर वह झनझनाकर बज उठी, 'बदला कैसा? जेल की सजा नहीं काटने से तुम्हारे साथ घर कैसे करती? हमारे बीच सामञ्जस्य रहना चाहिए न।'

प्रमथ क्षुब्ध होकर बोला, 'सो ठीक किया है तुमने। लेकिन इसके बदले यदि...'

उसके इतने बड़े काम को प्रमथ समर्थन नहीं करता। गुस्सा और दुःख से लाल हो गया गीता का चेहरा। 'जेल में भी उपदेश झाड़ने आए हो? कुछ दिन सब्र करते नहीं बना मेरे जेल से निकलने तक!'

प्रमथ ने घूँट भरी। गीता की आँखें मिट मिट करने लगीं।■

शिम्रीत ओर

१९४५ में जेरूसलेम में जन्म। इज़राइल की ख्यातिप्राप्त कवयित्री और गीतकार। उनके गीतों की धुनों को सर्वश्रेष्ठ संगीतकारों ने रचा है। गीतों के साथ-साथ अनेक कविताएं लिखी हैं जिनमें वैयक्तिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों को अभिव्यक्ति मिलती है। आजकल वे नगर रमत-हशरोन में संगीत के महाविद्यालय में गीत लेखन सिखा रही हैं। शिम्रीत ओर को सरकार और संगीत अकादमी की तरफ़ से सम्मानित किया गया है। गीतजय-जयकार (Halleluiah) उनके उन प्राथमिक गीतों में से एक है जिनके कारण उन्हें विश्व भर में ख्याती प्राप्त है।

अनुवाद

हिब्रू से हिन्दी अनुवाद - डॉ. गेनादी श्लोम्पेर

क्या सुहावना यह संसार
इस संसार में सदा रहे प्यार
धन्यवाद कहें और कहते रहें
कि भगवान ने यह विश्व बनाया है
और मनुष्य को मिला यह उपहार

रात बीत जाए, दिन चढ़े
इसके गुण भी हम गा रहे हैं
जो हुआ था, उसकी जयकार, मेरे यार
और जो होनेवाला है, उसकी जयकार

क्या सुहावना यह संसार
इस संसार में सदा रहे प्यार
और हमारी यह जय-जयकार
गूंजा करेगी हज़ारों बार
हर जगह, यहां और समुंदर पार

रात बीत जाए।

हर इंसान को सुख मिले
हर घड़ी वह मौज से रहे
हाथ मिला कर बन जाएंगे हम रिश्तेदार
और मिलकर गाएंगे यह जय-जयकार

रात बीत जाए...

इस गाने को हिब्रू भाषा में यूट्यूब पर सुना जा सकता है।
http://www.youtube.com/watch?v=uDFNZwmkMxs

नीना वाही
दिसम्बर में कानपुर में जन्म। कानपुर विश्वविद्यालय से रसायन शास्त्र में एम.एस.सी. और बी.एड.। १९९७ में अमेरिका पहुँचीं। महिला उत्थान के लिये WRise तथा कुछ अन्य संस्थाओं से जुड़ी हैं। कविताएँ लिखती हैं। सम्प्रति - मिडिल स्कूल में विज्ञान शिक्षक।
सम्पर्क - neeshina@gmail.com

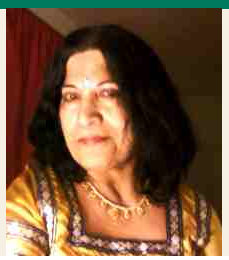

उड़ने दे मुझे

खोल दे पिंजरा, उड़ने दे मुझे
उन्मुक्त पवन सा, उड़ने दे मुझे
नील गगन ही थांव मेरी
पँख हैं कोमल कठोर इरादे
उड़ने दे मुझे, उड़ने दे मुझे

खिलने दे मुझे, मुझे खिलने दे
कोमल कली जान न मसल मुझे
खिलने से पहले ही न कुचल मुझे
महकने दे मुझे, सुवासित पुष्प बनूँ मैं
खिलने दे मुझे, खिलने दे मुझे

पढ़ने दे मुझे, पढ़ने दे मुझे
ज्ञान ही है शक्ति मेरी
विद्यालय ही है आलय मेरा
घर के घेरे में न घेर मुझे
पढ़ने दे मुझे, पढ़ने दे मुझे

ओस की बूँद सी हूँ मैं
शीतलता ही है तासीर मेरी
न झोंक मुझे संघर्षों की तपती लू में
सुखा दे जो मेरा ही अस्तित्व

भाई है तू मेरा तो बाँध मुझे राखी
रक्षा की तूने मेरी रक्षक बनूं मैं तेरी
शक्ति मुझमें भी है भूल न जाना
सम्मान करो मेरी शक्ति का
ललकारो न मेरी शक्ति को।
■

मीना चोपड़ा

१७ मई १९५७ को नैनीताल में जन्म। प्रकाशित किताबें - Ignited Lines (अंग्रेजी कवितायें), सुबह का सूरज अब मेरा नहीं है! (हिंदी, उर्दू, रोमन)। वेबसाइट: http://meenachopra17.wix.com/meena-chopra-artist. ब्लॉग: http://meenasartworld.blogspot.ca/

सम्पर्क : meenachopra17@gmail.com

कविता

सर्द सन्नाटा

सुबह के वक़्त
आँखें बंद करके देखती हूँ जब
तो यह जिस्म के कोनों से
ससराता हुआ निकल जाता है
सूरज की किरणें चूमती हैं
जब भी इसको
तो खिल उठता है यह
फूल बनकर
और मुस्कुरा देता है
आँखों में मेरी झांक कर

सर्द सन्नाटा
कभी यह जिस्म के कोनो में
ठहर भी जाता है
कभी गीत बन कर
होठों पे रुक भी जाता है
और कभी
गले के सुरों को पकड़
गुनगुनाता है
फिर शाम के
रंगीन अंधेरों में घुल कर
सर्द रातों में गूंजता है अक्सर
सर्द सन्नाटा

मेरे करीब
आ जाता है बहुत
बरसों से मेरा हबीब
सन्नाटा।
■

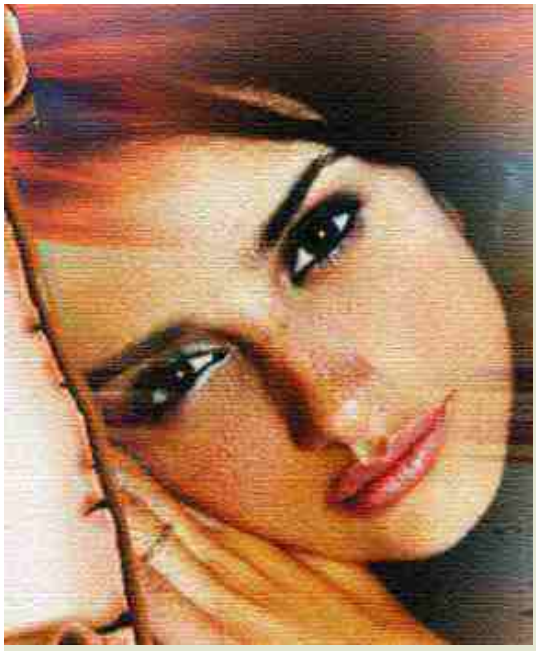

और कुछ भी नहीं

ख़यालों में डूबे
वक्त की सियाही में
कलम को अपनी डुबोकर
आकाश को रोशन कर दिया था मैंने।
और यह लहराते
घूमते-फिरते, बहकते
बेफ़िक्र से आसमानी पन्ने
न जाने कब चुपचाप
आ के छुप गए
कलम के सीने में।
नज़्में उतरीं तो उतरती ही गईं मुझमें
आयतें उभरीं
तो उभरती ही गईं तुम तक।
आँखें उठीं तो देखा
क़ायनात जल रही थी।
जब ये झुकीं
तो तुम थे और कुछ भी नहीं।
■

सीमा सिंघल

रीवा में जन्म। राजनीति शास्त्र में एम.ए.। काव्य संग्रह 'अर्पिता' हिन्द युग्म से प्रकाशित एवं साझा काव्य संकलन अनुगूंज, शब्दों के अरण्य में भी कविताएँ संकलित। पुराने सिक्के संग्रहित करने का शौक। हिन्दी ब्लॉग http://sadalikhna.blogspot.com पर लिखती हैं। सम्प्रति - एक निजी संस्थान में निज सचिव।

ई-मेल : sssinghals@gmail.com

शब्दों को बांधकर रखना

शब्दों को बांधकर रखना
संयम की डोर से शब्दों को मनाने के लिए
जब कभी भावनाओं की स्याही भरी
फिर कलम को चलाया स्नेह से
कागज पे उतरे कुछ शब्द पुराने
कुछ नये भी, कुछ बिल्कुल अंजाने
मैं हैरान उनके अर्थों को समेटती रही
झांकती कभी उनकी गहराई में
पूछती पता कहां से आये हैं कहां जाना है
मन डूबता कभी इनके भावों में
कभी खो जाता संग इनके अर्थों में

कभी-कभी ये फिसल जाते हैं जबान से
कभी इनका स्वर ऊंचा भी हो जाता है
इनके फिसलने से
अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती
रिश्ते टूट जाते हैं
शब्दों की मर्यादा सम्बंधों में मिठास घोलती है
संवाद की गरिमा शब्दों से ही

यह चिंता की लकीरें कैसी
शब्द बेपरवाह होते हैं यह सच है
हम ढूंढते हैं, इन्हें रचते हैं
फिर पकड़ते हैं कई बार तो
ये पकड़ में आकर भी पकड़ में नहीं होते
कई बार जैसे आंधियों की तरह
शोर मचाते हुए से
ये आए वो गए...
हम जहां के तहां।

■

सुधा दीक्षित

मथुरा में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। कविता एवं सृजनात्मक लेखन में विशेष रुचि। सम्प्रति - बंगलुरू में रहती हैं।

सम्पर्क : sudha_dixit@yahoo.co.in

कविता

एक

आज भी तेरी महक ले के चली आती है
कभी खिड़की कभी दरवाज़ा खटखटाती है
कभी तेज़ी से गुज़रती है बजाती सीटी
मेरी दुश्मन है सबा, किस क़दर सताती है।

मैं तुझे भूलना चाहूं भी तो न भूल सकूं
तेरे घर से तेरा अहसास लिए आती है
तूने जो गीत मोहब्बत के सुनाये होंगे
मेरी तनहाइयों में आके गुनगुनाती है।

क्या हुआ तुमको बहुत दिन से क्यों नहीं आये
ऐसे बेकार के सवाल पूछे जाती है
दर्द की बुझती हुई आग को हवा देकर
मेरी तारीकियों में रौशनी जगाती है।

दो

तर्के-ए-मुहब्बत और इतनी खूबसूरत!
ये तुम्हारे ही बस की बात थी
मुझे गुमान तक न हुआ कि
वो हमारी आखरी मुलाक़ात थी।

तीन

सांझ का धुँधला आकाश हो जाऊं
चाहता है जी उदास हो जाऊं
ज़िंदगी आ पकड़ ले हाथ मेरा
संग तू हो मौत के जब पास जाऊं।

चार

तुमने तो बस दोस्त भी
बनना गवारा ना किया
हम तुम्हे दर्जा खुदा का
देते देते रह गये।

पाँच

झील में छोटा-सा इक पत्थर
ज़रा तुम फेकना
दिल में मेरे ऐसी ही मौजें
रवाँ हैं आजकल।

■

सौरभ राय

१० सितम्बर १९८९ में जन्म। इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। कविता संग्रह 'अनभ्र रात्रि की अनुपमा', 'उत्थिष्ठ भारत' एवं 'यायावर' प्रकाशित। कविताएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्प्रति - ब्रोकेड संस्थान, बंगलुरु में कार्यरत।

सम्पर्क : sourav894@gmail.com

नहीं रहा वो झारखंड

रिज़र्वेशन के नशे में
कुछ अमीर
अपनी भाषा और तहज़ीब से दूर
बाज़ार की तरफ भागते हैं!

जींस और टाइटस में
सुन्दर लड़कियां
भूल गयीं हैं
आदिवासी पहनावों की नज़ाकत।

रॉक पॉप के नशे में
अमीर भूल चुके हैं यहाँ के लोकगीत
और गरीब भूल गए हैं
गुनगुनाना।

ठेकेदार, अफसर, चमचे, नेता
हाथ में रंगीन बोतलें लिए
बीड़ी सुलगाने के बहाने
गरीब की रसोई में घुसते चले जाते हैं।

किस्से सुनाने वालों से ज़्यादा
किस्से हैं इस संस्कृति के
कहानी सुनाने वाला कोई नहीं बचा
तीर-धनुष चलाने वाला कोई नहीं बचा
न ही नगाड़ा मांदल बांसुरी बजाने वाला
पाश्चात्य की कॉफिन में
मुर्दा पड़ी है
एक पूरी की पूरी सभ्यता!

■

संजीव निगम

१६ अक्तूबर को जन्म। शिक्षा- एम.फिल। कविता, कहानी, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में सक्रिय रूप से लेखन कर रहे हैं। रचनाएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित। कई सम्मान प्राप्त। टीवी धारावाहिक 'अरेंज्ड मैरिज' तथा १८ कॉर्पोरेट फिल्मों का लेखन। 'तीन हसीना' एवं 'ऑपरेशन करोड़पति' हास्य नाटकों का अनेक बार मंचन। रामधारी सिंह दिनकर के खंड काव्य 'रश्मि रथी' की कई बार नाट्य प्रस्तुति के प्रणेता। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से १६ नाटकों का प्रसारण। सम्प्रति - विज्ञापन जगत से जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : डी-२०४, संकल्प-२, पिंपरी पाड़ा, फिल्म सिटी रोड, मलाड पूर्व, मुंबई-९७ ईमेल : nigamsanjiv59@gmail.com

कविता

संवेदनाएं अभी मरी नहीं हैं

हर दिन जब हम एक-दूसरे के पास से
चुपचाप गुज़रते हैं
परिचय-अपरिचय का धूपछाँही आभास लिए
मेरे मन के छोटे से गमले में
कितने ही सवालों की कोंपलें फूट पड़ती हैं।

कहीं ऐसे ही कुछ सवाल
तुम्हारे मन में भी तो नहीं?

हर दिन जब हम एक-दूसरे की ओर
चले आ रहे होते हैं
मुझे महसूस होता है कि
मैं अच्छा और अच्छा
सुन्दर और सुन्दर होता जा रहा हूँ
इस विश्वास के साथ कि
मुझमें ऐसा बहुत कुछ है
जो मुझे तुमसे जोड़ सकता है।

कहीं इसी जुड़ाव का विश्वास
तुम्हारी कल्पनाओं में भी तो नहीं?

हर दिन जब घड़ी की सुस्त रफ़्तार सुईयां
बड़ी देर बाद
तुम्हारे आने के सुखद क्षण संजोने लगती हैं
मेरे शरीर के भीतर एक सुनहली कंपकंपी
रेशमी जाल बुनने लगती है।

आँखों के आगे उगने लगता है तुम्हारा रूप
अच्छा और अच्छा
सुन्दर और सुन्दर
पवित्र और पवित्र बनकर।

कहीं ऐसे ही किसी मधुर आभास की
चमक तुम्हारी आँखों में भी तो नहीं?

हाँ, यदि सचमुच ऐसा है तो
यह मानना पड़ेगा कि
हमारी संवेदनाएं अभी जिंदा हैं।
हमारी कल्पनाओं में अभी चटख रंग बाकी हैं।
हमारे जिस्मों में जीवन की मीठी गर्मी की तपन
अभी शेष है।
और
अविश्वास, अजनबीपन व अनैतिकता से भरे
इस बर्बर जंगल में रहते हुए भी
हम अभी तक मनुष्य हैं।
■

अशोक अंजुम

१५ दिसम्बर १९६६ को दवथला, अलीगढ़ में जन्म। शिक्षा - बी.एससी., एम.ए. (अर्थशास्त्र, हिंदी), बी.एड.। गीत, ग़ज़ल, व्यंग्य, लघुकथा की १३ पुस्तकें प्रकाशित एवं ३२ पुस्तकों का सम्पादन। काव्य मंच के चर्चित कवि। विगत २० वर्षों से 'अभिनव प्रयास' पत्रिका सम्पादित-प्रकाशित। सम्प्रति - अध्यापन।

संपर्क : स्ट्रीट-२, चन्द्र विहार कॉलोनी, क्वार्सी बायपास, अलीगढ़-२०२००१ ईमेल : ashokanjumaligarh@gmail.com

एक

रफ्ता-रफ्ता घिरा कुहासा गाँव, गली, घर डूब गए
नदिया, जंगल, पर्वत, बादल सारे मंजर डूब गए

इतना डूबे, इतना डूबे उबर न पाए जीवन-भर
झील-सी तेरी इन आँखों में कितने शायर डूब गए

अपने बाजू, अपनी हिम्मत पर हम पार चले आये
कितने ऐसे भी देखे जो कश्ती पाकर डूब गए

मयखाना खाली कर आये लेकिन होश नहीं खोए
तुमने ये किस तरह पिलाई जो हम पीकर डूब गए

कुछ ऐसे दरिया भी देखे अहसासों की दुनिया में
निकल के आये जहां से इन्सां लेकिन ईश्वर डूब गए।

दो

ज़िन्दगी का ज़िन्दगी से वास्ता जिंदा रहे
हम रहें जब तक हमारा हौसला जिंदा रहे

वक़्त ने माना हमारे बीच रख दीं दूरियाँ
कोशिशें ये हों, दिलों में रास्ता जिंदा रहे

ऐ मेरे दुश्मन! तुझी ने दी मुझे जिंदादिली
मैं अगर जिंदा रहूँ, तू भी सदा जिंदा रहे

प्यार से सुलझाइये, हल गुत्थियां हो जायेंगी
जब तलक संसार है ये फलसफा जिंदा रहे

मेरी कविता, मेरे दोहे, गीत मेरे और ग़ज़ल
मैं रहूँ या न रहूँ मेरा कहा जिंदा रहे।

तीन

क्या कहें इन दिनों हालात से डर लगता है
टूट जाओ तो हरिक बात से डर लगता है

नाग देखे हैं कई ज़हर उगलने वाले
अब फ़क़्त आदमी की ज़ात से डर लगता है

एक जंगल है तेरी याद का मीलों लम्बा
खो न जाऊँ कहीं ज़ज्बात से डर लगता है

तेरे मन से न ये किरदार मेरा गिर जाए
बस इसी सोच में सौगात से डर लगता है

हम न बिखरेंगे, न भटकेंगे चलो मान लिया
वक़्त बेवक्त की बरसात से डर लगता है।

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

मकाँ ख़मोश अगर है तो दोष किसका है

पाकिस्तान के उस्ताद शायर जनाब वजीर आग़ा साहब की किताब 'उजड़े मकाँ का आईना' पढ़कर गागर में सागर जुमला याद आता है। पच्चीस रुपये की इस छोटी-सी पेपर बैक किताब के एक सौ साठ पृष्ठों में उर्दू शायरी का अनमोल खज़ाना भरा पड़ा है। वो लोग जो उर्दू शायरी की नफासत और नजाकत को पसंद करते हैं इस किताब को सीने से लगाये रक्खेंगे ये मेरा दावा है।

इतना न पास आ कि तुझे ढूंढते फिरें
इतना न दूर जा कि हमावक्त पास हो
मैं भी नसीमे-सुब्ह की सूरत फिरूं सदा
शामिल गुलों की बास में गर तेरी बास हो

पाकिस्तान के सरगोधा में १८ मई १९२२ में जन्में वज़ीर आग़ा साहब हालाँकि हिंदी के पाठकों में अपने दूसरे साथियों की तरह बहुत अधिक प्रसिद्ध नहीं हो पाए क्योंकि वो मुशायरों के शायर कभी नहीं रहे जहाँ कमोबेश रोमांटिक ग़ज़लें पेश की जातीं हैं लेकिन अदबी हलकों में उनका दबदबा बाकायदा कायम है। आग़ा साहब नज्मों के उस्ताद माने जाते हैं लेकिन जब उन्होंने ग़ज़लें कहीं तो किसी से पीछे नहीं रहे।

यकीं दिलाओ न मुझको कि तुम पराये नहीं
मुझे तो ज़ख्म लगे तुमने ज़ख्म खाए नहीं
ये आईना किसी उजड़े मकाँ का आईना है
मैं गर्द साफ़ भी कर दूं तो मुस्कुराये नहीं
मकाँ ख़मोश अगर है तो दोष किसका है
करे भी क्या जो कोई उसको घर बनाये नहीं

आग़ा साहब की रचनाएँ हिंदी और पंजाबी के अलावा ग्रीक, अंग्रेजी, स्वीडिश, स्पेनिश आदि कई यूरोपियन भाषाओं में अनूदित हुई हैं। कई सम्मानों से अलंकृत वजीर आग़ा कुछ आलोचकों की दृष्टि में नोबेल पुरुस्कार के लिए पाकिस्तान से वाजिब हकदार हैं।

चुप रहूँ और उसे मलाल न हो
अनकही का तो ऐसा हाल न हो
कुफ्ल कैसे खुलेगा उस लब का
मेरे लब पर अगर सवाल न हो
हूँ अकेला भरे ज़माने में
कोई मुझसा भी बेमिसाल न हो

जनाब शीन काफ निजाम और नन्द किशोर आचार्य जी ने बहुत मेहनत से इस किताब को सम्पादित किया है। इसमें आग़ा साहब की लगभग सौ से अधिक ग़ज़लें और चालीस के करीब नज्में समाहित हैं। उर्दू शायरी का हुस्न बिखेरती उनकी हर ग़ज़ल और नज़्म लाजवाब है और बार-बार पढ़ने लायक है। ये किताब ऐसी नहीं जिसे आप एक सांस में पढ़ कर उठ जाएँ बल्कि इसे घूँट-घूँट पी कर देर तक इसके सरूर में डूबे रहें, जैसी है।

तमाम उम्र ही गुजरी है दस्तकें सुनते
हमें तो रास न आया खुद अपने घर रहना
ज़रा सी ठेस लगी और घर को ओढ़ लिया
कहां गया वो तुम्हारा नगर नगर रहना

> आग़ा साहब की रचनाएँ हिंदी और पंजाबी के अलावा ग्रीक, अंग्रेजी, स्वीडिश, स्पेनिश आदि कई यूरोपियन भाषाओं में अनूदित हुई हैं।

इस नायाब किताब को मंगवाने के लिये वाग्देवी प्रकाशन से उनके मेल vagdevibooks@gmail.com पर आग्रह किया जा सकता है।

छोटी बहर ही में उनकी एक और ग़ज़ल का लुत्फ़ उठाईये और देखिये के कैसे कम लफ़्ज़ों में गहरी बात की जाती है।

आँख में तेरी अगर सहरा नहीं
हाल पर मेरे तू क्यूँ रोया नहीं
मैं सदा दूं और तू आवाज़ दे
इस भरी दुनिया में मुमकिन क्या नहीं
रो रहा हूँ एक मुद्दत से मगर
आँख से आंसू कोई टपका नहीं।■

गर्भनाल का मई-२०१३ अंक प्राप्त हुआ। यह अंक भी साधारण अच्छे स्तर का है। पत्रिका में कविताएँ, कहानियाँ हमेशा अच्छी और दिलचस्प हैं और चित्र बहुत सुंदर हैं। मुझे डॉ. रामविलास शर्मा के विचार बहुत पसंद हैं। वे सच कहते हैं कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान बातें हो सकती हैं। गर्भनाल पत्रिका हिंदी प्रेमियों के लिये वास्तव में गर्भनाल है, क्योंकि यह हमको भारत से संबंध बनाये रखने में मदद करती है।

डॉ. इवा अरादि, प्राग

मई-२०१३ अंक का सम्पादकीय सशक्त और सार्थक लगा। इज़राइल के विख्यात हिन्दी विद्वान डॉ. गेनादी श्लोम्पेर का साक्षात्कार सराहनीय है। विदेशी विद्वान की हिन्दी के प्रति समर्पित भावना मन को प्रफुल्लित कर गई। 'डॉ. रामविलास शर्मा का भाषिक-चिन्तन' लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक लगा। येल की कथा गोष्ठी, न्यूयार्क में होली के रंग में रंगे कवि सम्मेलन का समाचार चित्रों के साथ मन लुभा गया। 'सस्पेंडेट अनिमेशन-अंटार्टिका' रोचक है। 'जगदीश्वरं' लेख जहाँ आध्यात्मिक पक्ष को उजागर करता है, वहीं अंग्रेज़ी और हिन्दी दोनों में, 'अन्तरात्मा की भव्यता' लेख अन्धविश्वास और विज्ञान के संबंध में विशिष्ट जानकारी देता है। स्थायी स्तम्भ पंचतंत्र, महाभारत सदा की भाँति रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। 'वेद की कविता' भी सदा की भाँति कवि के वैदुष्य की परिचायक है। सूर्या-परिणय के ये सूक्त आज भी उपयोगी और सार्थक हैं।

कुल मिलाकर समग्र पत्रिका ही उच्च स्तरीय है, जो आपके सम्पादन के कौशल की प्रतीक है।

शकुन्तला बहादुर, अमेरिका

गर्भनाल पत्रिका का ७८वां इन्टरनेट संस्करण हर बार की तरह अपनी नवीनता में खिला हुआ पढ़ने को मिला। पत्रिका के माध्यम से सबके समक्ष भारतीय संस्कृति और उसके स्रोत परोसे जा रहे हैं। विचार, मुद्दे, संवेदना, आवश्यकताएँ, अनुभूति और संघर्ष की धड़कनें हर रचना में महसूस होती है। गर्भनाल की अपनी एक टीम होने के बावजूद कवि-लेखक बदलते रहते हैं लेकिन गर्भनाल पत्रिका का भारतीय संस्कृति में पगा संवेदनात्मक ज्ञान नहीं बदलता है।

भारतीय संस्कृति बनाम मानवीय संस्तृति का विश्व के नागरिकों से गर्भनाल संबंध किन स्रोतों के आधार पर सम्बद्ध है, इसे पत्रिका में अपनी तरह से अनावृत्त किया जाता है। सम्पादन में अपनी तरह की सोद्देश्यपूर्ण सुधी हुई शोधात्मक कल्याणकारी वैचारिक दृष्टि है जो जीवन सम्बद्ध है। इसीलिए जीवनदायी भी है। विश्व के अनेक कोनों में बसे भारतीय और भारतवंशी हिन्दुस्तानी और हिन्दीवंशी के मानस-मेधा पर यह पत्रिका अपनी तरह से आत्मीय और रचनात्मक दस्तक देती है और दार्शनिक-सृजनात्मक रिश्ता जोड़ती है। इस रिश्तेदारी को रामायण-महाभारत और अन्य प्राप्य सांस्कृतिक सूत्रों से जोड़ते हुए गर्भनाल के सदृश स्थायी संबंध अमिट और अटूट हैं।

यह पत्रिका भारतीय संस्कृति और भाषा में पगे विश्व हिन्दुस्तानियों को वैश्विक परिवार के तौर पर विकसित होने में मदद कर रही है।

भारतवंशियों की जीवन यात्रा में भारतीय संस्कृति को साथ में लेकर जी लेने और अंगीकार करने का विश्व भर में क्या परिणाम है। कौन-सी दुरूहताएँ हैं और क्यों हैं इस पर भी पत्रिका व्यापक वैश्विक विवेक दृष्टि जमाये हुए है। विदेशी हिन्दी विद्वानों से संवाद की श्रृंखला से यह प्रमाणित किया गया है कि भारतीय संस्कृति और भाषा का संबंध देह और मन से अधिक मेधा और आत्मा से है। बतौर प्रोफेसर हिन्दी शिक्षक के रूप में कैरेबियाई और यूरोप आदि अनेक देशों के संदर्भ में मेरा भी यही अनुभव रहा है। किसी भी देश का विदेशी हिन्दी भाषी और विद्वान जब हिन्दी में बात करता है तब वह भारतीय संस्कृति की ही अप्रत्यक्ष रूप से बातें करता है और हिन्दी भाषा में संवाद करते समय अंग्रेजी या किसी भी दूसरे देश की भाषा के शब्दों की घालमेल नहीं करता।

हालैंड में लाइडन विश्वविद्यालय के केस इंस्टीट्यूट के अन्तर्गत अपने एक विशिष्ट व्याख्यान के दौरान संस्कृत के विद्वान और विभागाध्यक्ष डॉ. ग्रीफिथ मूलक ने वेदों पर अपना विशिष्ट शोध प्रस्तुत किया। उस समय वे पंडितों की तरह धोती, कुर्ता पहने हुए थे और कंधे पर पीताम्बरी उत्तरीय था। गर्भनाल में प्रकाशित विदेशी विद्वानों के साक्षात्कारों से मेरा यह विश्वास और निष्कर्ष पुख्ता हुआ है कि विदेशी जब हिन्दी भाषा सीखता है तो वह उसके संस्कार और प्रकृति को अपने मानस और व्यक्तित्व में अंगीकार करता है। विदेशी होकर भी, वह हिन्दी भाषा को अपनी भाषा मानता है और उस पर गर्व करता है।

७८वें अंक में पीढ़ियों के अन्तराल पर कई जगह समय-सापेक्ष सूक्तियाँ पढ़ने को मिलती हैं। आज के वृद्धों को जीवित रहने से इच्छा-मृत्यु के पक्ष में युक्तियाँ दिखती हैं। लोभ की चपेट में ऐसा समाज विकसित हो रहा है जिसमें बूढ़ों के लिए न सच्चा आदर बचा है, न बच्चों के लिए सच्चा स्नेह। सन्तान व्यस्क हो जाय तो माता-पिता से स्वाधीन हो जाती है भौतिक रूप से भी और भावनात्मक रूप से भी। दुनिया भर के समाज की अब यही स्थिति है। नीदरलैण्ड में

तीन सितारे वाले होटलों सी सुविधा सम्पन्न वृद्धालयों में भी बूढ़े स्त्री-पुरुष महीनों अपनी व्यस्क हो चुकी सन्तानों की प्रतीक्षा में बिता देते हैं। वे अपने नाती-पोतों के बचपने और युवा होने की रौनक देखने को तरस जाते हैं। सभ्यता के इस स्वरूप को देखकर हृदय विदीर्ण होता है। गर्भनाल पत्रिका के अंकों में ऐसे अनेक वैचारिक विषयों पर आलेख और टिप्पणियाँ पढ़कर कुछ सकारात्मक उम्मीदे जागती हैं और यही गर्भनाल की सार्थकता है।

पुष्पिता अवस्थी, नीदरलैण्ड

गर्भनाल-७८ के जबर्दस्त अंक के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। डॉ. रामविलास शर्मा का मार्मिक चिंतन पढ़वाने के लिये। यह बहुत ही शिक्षाप्रद और रोचक है। मनोज कुमार सिंह की 'अल्हड़ सा बचपन' कविता बहुत अच्छी लगी। डॉ. जयप्रकाश तिवारी की कविता 'सम्बन्ध दर्शन' भी बहुत रोचक लगी।

सुमन वर्मा, ऑस्ट्रेलिया

गर्भनाल के ताजा अंक में 'अंधविश्वास और विज्ञान' पर चिंतन पढ़ा। सदैव की तरह इस बार भी बहुत ही सटीक और ज्ञान पूर्ण बातें ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव जी ने इस स्तम्भ में लिखी हैं ।

सुभाष शर्मा, आस्ट्रेलिया

गर्भनाल के मई-२०१३ अंक में हिन्दी प्रेमी डॉ. गेनादी श्लोम्पेर के हिन्दी सम्मेलनों की उपयोगिता पर दिये गए वक्तव्य से मैं पूरी तरह सहमत हूँ।

सभी हिन्दी प्रेमी विदेशियों से साक्षात्कार पढ़कर एक प्रेरणा मिलती है कि ये दूसरे देशों में रहने वाले, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और वह हिन्दी के क्षेत्र मैं इतना कार्य कर रहे हैं, तो हमारे जैसे लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, अवश्य अपना योगदान दे सकते हैं। मेरे विचार से यदि प्रत्येक हिन्दी भाषी जो दूसरे देशों में रहते हैं, यह प्रण कर लें कि उन्हें दस-बीस व्यक्तियों को या बच्चों को हिन्दी भाषा सिखाना है तो यह शायद इन बड़े-बड़े सम्मेलनों से भी ज्यादा कारगर सिद्ध हो सकता है। इन सभी विदेशी साक्षात्कारों के लिए पत्रिका बधाई की पात्र है। इस अंक की कहानी 'सस्पेंडेड अनिमेशन' बहुत पसंद आई। कथाकार का ज्ञान व्यापक है।

मुख पृष्ठ की तस्वीर बहुत ही सुखद है। आज के समय में गोबर से बनायी हुई इन पूजा की कलाकृतियों का प्रचलन समाप्त-सा होता जा रहा है। तस्वीर के साथ किसी अच्छे कवि की कुछ पंक्तियाँ भी होतीं तो और भी मनमोहक हो जाती।

आशा मोर, ट्रिनिदाद

गर्भनाल के हिंदी जागरण अभियान की यात्रा सराहनीय है। पिछले छः महीनों में इसका स्वरूप देख कर विचार मन में आता है कि आखिर हम कहाँ गड़बड़ा गए। इसीलिए हिंदी के सन्दर्भ में अपना अनुभव पाठकों के साथ बांटने की इच्छा बलबती हुई है।

मैंने अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढाई की थी। हिंदी सिर्फ हिंदी कक्षा और बोलचाल तक ही सीमित थी। हिंदी अखबारों की अगर याद आती है तो आज भी एक अजीब-सी पीड़ा का आभास होता है। इन अख़बारों में बहुत कुछ ऐसा होता था जो उस उम्र के अनुरूप नहीं था। ऐसे में हिंदी के प्रति मन में आदर का भाव न बन पाना आश्चर्य की बात नहीं है। तो फिर आखिर भाषा से व्यक्ति कैसे बंधा रह सकता है। जितने भी साक्षात्कार 'बातचीत' कॉलम के अंतर्गत गर्भनाल में प्रकाशित हुए हैं, उनसे प्रतीत होता है कि इसका रोज़मर्रा की शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सभी के हिंदी सीखने के कारण भिन्न-भिन्न हैं। उन कारणों को समझना अति आवश्यक है।

भाषा को जीवित रखना सिर्फ सरकार या नियमों से नहीं हो सकता। भाषा के द्वारा क्या प्रवाहित किया जा रहा है इस पर चिंतन करना ज़रूरी है। भाषा नली का काम करती है और इसमें भरा भाव अमृत या ज़हर हो सकता है।

इसका एक उदाहरण है 'अखंड ज्योति' पत्रिका। इस वर्ष यह पत्रिका अपना हीरक जयंती मना रही है। इतने वर्षों से इसकी बिना किसी विज्ञापन की सहायता के यहाँ तक की यात्रा पूरी हुई है।

इसके मूल स्तम्भ श्रीराम शर्मा जी ने इसके माध्यम से अपने दिव्य प्रेम को आध्यात्मिक ढांचे में पिरो कर अनेकों के हृदयों को सींचा। अनेकों वे जो साधारण जीवन शैली जीते रहे। जिसने भी इसे पढ़ा वह निहाल हुआ। यही नहीं इस पत्रिका ने असंख्यों को आत्मीयता के बंधन से बांध दिया। आज अखंड ज्योति परिवार की संख्या एक करोड़ से भी ऊपर है। अधिकतर हिंदी भाषा में प्रकाशित यह पत्रिका अनेक प्रांतीय भाषाओं में भी प्रकाशित हो रही है।

२००० से ऊपर की संख्या में श्रीराम शर्मा द्वारा 'हिंदी' में लिखी गयी पुस्तकों में से मेरे अकेलेपन का अति मित्र — 'सूनसान के सहचर' वह एक उपन्यास रूपी 'हिमालय यात्रा' वृतांत है जो हर पंक्ति में गहरी अनुभूति लिए हुए है। आज की हलचल की जीवन शैली में जब हर व्यक्ति डिप्रेशन और अन्जाइटी से ग्रस्त है, यह पुस्तक अपने आपको अंतस के करीब लाती हुए उन सभी भय से ऐसे साक्षात्कार कराती है, मानो जैसे बिना औजारों के अंतर्मन की शल्य चिकित्सा हो रही हो।

संगीत से लगाव होने के कारण मेरा मन फ़िल्मी संगीत की और आकर्षित हुआ। किशोरावस्था के मन पर इसका क्या असर होता है इससे हम सभी अवगत हैं। किन्तु जब

'शांतिकुंज' के प्रज्ञा गीत सुनने का अवसर मिला तो मन के उस भावुक आकर्षण को नयी दिशा मिल गयी। प्रज्ञा गीत के रूप में आत्मोत्कर्ष करती हिंदी कविताओं की सहस्र कड़िया अखंड ज्योति की अधिकतर पत्रिका में प्रकाशित होती रही। इसे पिरोने वाले कवियों ने हर समय अपने पथ प्रदर्शक - श्रीराम शर्मा जी का संरक्षण पाया। इनमें एक नाम माया वर्मा का भी है जो मेरे जन्म स्थान ग्वालियर की थीं।

उसी नेतृत्व में प्रकाशित 'नारी जागरण अभियान' वह दूसरी पत्रिका है जिसने ७० और ८० के दशक में घरेलू महिलाओं को अपने जीवन को संयत कर परिवार संवर्धन का सतत सन्देश दिया। मेरी माँ से जुड़े बचपन के कुछ अनुभव याद आते हैं कि कैसे उन्होंने अपने स्वास्थ्य पर नियंत्रण ही नहीं किया बल्कि खाना पकाने की विधि और खाद्य पदार्थ के चयन में परिवर्तन कर हम सबके स्वस्थ्य को भी उंचा उठाया। बहुत ही छोटी लगने वाली बातें जैसे — लौकी के छिलके फेकने की बजाय उनसे एक दूसरी सब्जी बना डाली, आलू को छीलना बंद कर दिया, गमले में सिर्फ फूल लगाने के बजाये सब्जी के पौधे लगा कर घर की ताज़ा सब्जियां उपलब्ध कराना। इस प्रकार उन्होंने साधारण भारतीय नारी के लिए एक नयी सोच दी। यह सब उस समय में हुआ, जब 'रसोई' नारी के लिए पिछड़ेपन का कारण समझा जाने लगा था।

नारी के स्वस्थ्य मन और भाव परिवार के लिए कितने आवश्यक हैं इसका ध्यान रखते हुए, इस पत्रिका ने हर परिवार की नीव — महिला को सुदृढ़ और प्राणवान बनाया।

हम विकास की बात करते हैं किन्तु उसकी नीव को भूल जाते हैं। हम नली को याद रखते है और द्रव्य को भूल जाते हैं। हिंदी का भविष्य सुनहरा ही होगा मगर इसे बनाना हमारे हाथों में है।

चिन्तन स्तम्भ के अंतर्गत 'अन्धविश्वास और विज्ञान' पर चिन्तन बहुत प्रौढ़ प्रस्तुति है। हमें यह ध्यान में रखना होगा कि भले ही विज्ञान ने हमारी समझ का दायरा निरंतर बढ़ाया है फिर भी विज्ञान अभी भी 'समझ' के इस क्षेत्र में आरम्भिक अवस्था में ही है। मेडिसिन के क्षेत्र को ही लें। जब कोई दवा मार्केट में आती है तो उस पर दो-तीन वर्ष तक परीक्षण हो चुके होते हैं। और उसे प्रमाण आधारित औषधि-एवीडेंस बेस्ड मेडिसिन कहते हैं। परन्तु व्यापक प्रयोग के बाद उसके साइड एफेक्ट सामने आने लगते हैं और परिष्कृत शोध के कारण इसी प्रमाणीकृत दवा के स्थान पर नयी औषधि आ जाती है। इसलिए ब्रह्माण्ड की तरह हमें भी निरंतर विकसित होने के लिए परिवर्तनशील बने रहना होगा। चाहे वह हमारे पूर्वजों का दिया का ज्ञान हो या विज्ञान प्रदत्त सिद्धान्त। सभी को हमें वर्तमान की प्रामाणिकता के आधार पर तौल कर देखते रहना होगा। अंधविश्वास और विज्ञान पर चिन्तन हमें दोनों के प्रति यही व्यापक दृष्टि बोध देता है।

डॉ. माधवी सिंह, अमेरिका

गर्भनाल के पिछले अंक में बेस्लर साहब का इंटरव्यू दिलचस्प व जानकारी पूर्ण है। इसी अंक में गंगाप्रसाद जी के फगुनी दोहे के साथ दिया फोटो वाकई फागुनी लगा। ज्योत्सना जी की कविता पसंद आई। बाकी की चिन्तनशील सामग्री को पढ़ने के लिए कब समय मिलेगा? पता नही। गर्भनाल के पुस्तक समीक्षक श्री चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद जी के स्वर्गवास का समाचार जानकर दुख हुआ। इतने प्रखर व निष्पक्ष समीक्षक को गर्भनाल के माध्यम से मेरी भावभीनी श्रद्धांजलि।

नीलम कुलश्रेष्ठ, अहमदाबाद

गर्भनाल के ताजा अंक में चिन्तन 'अन्धविश्वास और विज्ञान' पढ़कर बहुत अच्छा लगा। मुझे भी विश्वास है कि विश्वास से सब कुछ हो सकता है - इस पर। मेरे भी कई अनुभव हैं

प्रो. (डॉ.) विनोद प्रकाश सक्सेना
पूर्व कुलपति, भोपाल

गर्भनाल का मई अंक आद्योपांत पढ़ गया। अधिकांश रचनाएं स्तरीयता, सार्थकता और रोचकता जैसी तमाम कसौटियों पर खरी उतरती हैं। खासतौर पर ब्रजेंद्र श्रीवास्तव का लेख 'अंधविश्वास और विज्ञान' तथा डॉ. सुधीर साहु का भाषा विषयक लेख बहुत पसंद आया।

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु', खैरागढ़

गर्भनाल का ताजा अंक मिला। आपका हरेक अंक में पढ़ने की बढ़ियां सामग्री मिलती है। प्रदीप पंत जी की 'मन की बात' हिंदी की राह में मुश्किलें प्रभावशाली छाप छोड़ रहा है। मनोज कुमार जी कि कविताएँ बहुत बढ़िया लगीं। साथ ही सुबोध श्रीवास्तव जी की कविता कठपुतली मन को भा गई। पूरा अंक ही प्रसंशनीय, सराहनीय एवं संग्रहणीय है। कुशल संपादन हेतु बधाई स्वीकारें।

कीर्ति श्रीवास्तव, भोपाल

आपके द्वारा भिजवाई गई बहुमूल्य पत्रिका गर्भनाल प्राप्त हुई। मैं इसके लिये आपका बहुत आभारी हूँ। कवर पृष्ठ ने मुझे अपनी माँ की याद दिला दी। चित्र में दिल को छूने का एक नितांत क्षण दर्ज है।

देवेन्द्र सक्सेना